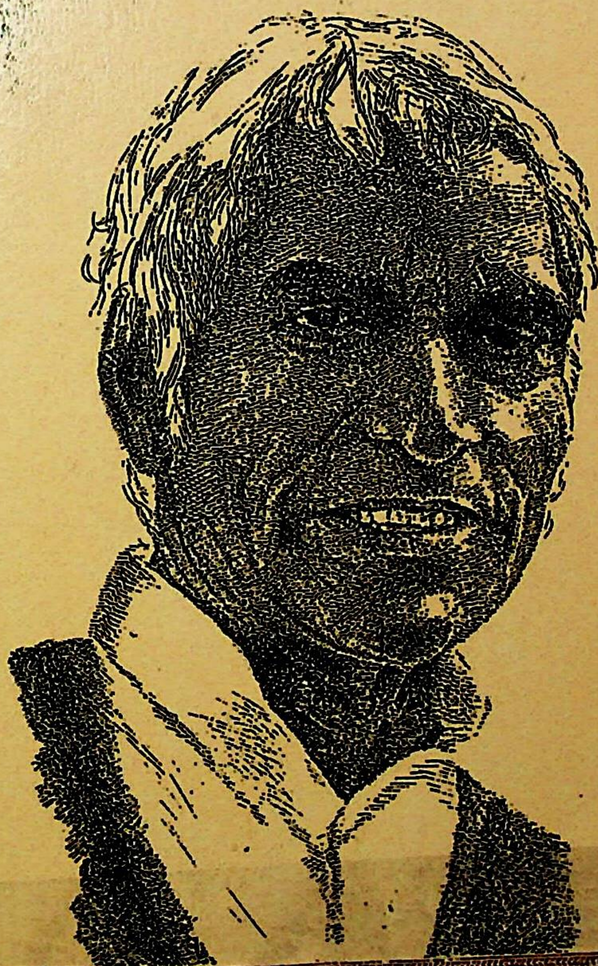
बाबा आमटे

तारा धर्माधिकारी

अनुवाद
डा. हेमा जावडेकर



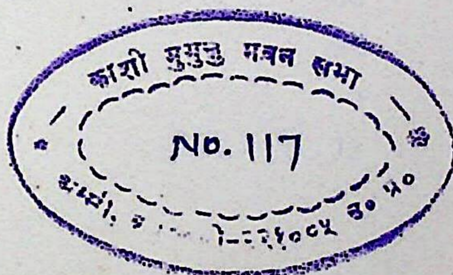
सतत शिक्षा पुस्तकमाला

बाबा आमटे

तारा धर्माधिकारी

अनुवाद
डा. हेमा जावडेकर

चित्रांकन
संतोष गुप्ता





नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

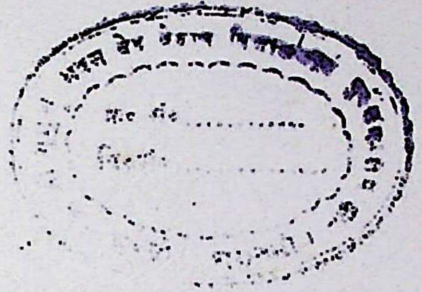
ISBN 81-237-3297-X

पहला संस्करण : 2000
चौथी आवृत्ति : 2005 (*शक 1927*)

Baba Amte (*Hindi*)

रु. 11.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली-110 016 द्वारा प्रकाशित



अनुक्रम



गठन

बाबा आमटे का जन्म 26 दिसंबर 1914 को महाराष्ट्र स्थित वर्धा जिले में हिंगणघाट गांव में हुआ था। उनका परिवार एक सनातनी ब्राह्मण परिवार था। उनके पिता देवीदास हरबाजी आमटे शासकीय सेवा में लेखापाल (एकांउटेंट) थे। वरोड़ा से पांच-छह मील दूर गोरजे गांव में उनकी ज़मींदारी थी। बाबा का बचपन बहुत ही ठाट-बाट से बीता। सोने के पालने में चांदी के चम्मच से उन्हें ख़ाना खिलाया जाता। रेशमी कुर्ता, सिर पर जरी की टोपी तथा पांवों में बूट—यही उनकी वेशभूषा रहती। उनकी चार बहनें और एक भाई था। उनका पूरा नाम मुरलीधर देवीदास आमटे है ।

बाबा अपने पिता से हमेशा डरे-सहमे से रहते, उनसे बात करने से कतराते थे। लेकिन अपनी मां से उनकी गाढ़ी छनती थी। उनकी माताजी एक स्वतंत्र विचारों वाली महिला थीं। उनका व्यक्तित्व अद्‌भुत था। मां भिन्न-भिन्न चित्र बनातीं, उन्हें मिठाई-टाफी के लिए पैसे देतीं तथा बड़ी चतुराई के साथ उनकी जिज्ञासा का समाधान भी करती थीं। बचपन में मां ने आमटे को खेलने के लिए एक लुढ़कने वाला गुड्डा दिया था जो बार-बार गिराये जाने पर भी उठ कर बैठ जाता था। मां कहा करती थीं, "देख बेटे, जिंदगी में इसी तरह गिरते-पड़ते रहने के, मात खाने के, धराशायी होने के प्रसंग आते ही रहेंगे, पर डरना नहीं, हथियार नहीं डालना। हार कर

भी मनुष्य की तरह लड़ते रहना, यही जीवन का दूसरा नाम है।"

बाबा के पिता सदा पूजा-अर्चना तथा कचहरी के कामकाजों में व्यस्त रहते। बाबा को अपनी मां के साथ पिसाई-कुटाई, पांनी में गोबर आदि घोल कर छिड़कना, रंगोली सजाना आदि जनानी कामकाजों में लगे रहते हुए देख कर पिता नाराज हो जाते। उसी तरह जवान होने पर उनके कुश्ती लड़ने, मारपीट में उलझने, मछलियां पकड़ने आदि शौक से भी पिता गुस्साये रहते। वे चाहते, बाबा ऐसे शौक फरमाएं जो रईसजादों को शोभा देते हैं। उनका नौकरों के साथ घुल-मिल कर रहना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था। एक बार किसी नौकर की कोठरी में रोटी खाने के कारण तथा होली के दिन उनके साथ रंग खेलने के 'अपराध' में बाबा की अच्छी-खासी धुनाई की गयी थी। बचपन में बैलगाड़ी में बैठ कर यात्रा करते समय नौकर आगे-आगे भागता रहता—पैदल ही। बचपन से यह बात बाबा के मन को खटकती थी।

बचपन में एक दिन बाबा के पिताजी ने उन्हें तथा उनके छोटे भाई मधु को पटाखे खरीदने के लिए पांच-पांच रुपयों की रेजगारी दी और दोनों को एक नौकर के साथ बाजार भेजा। मधु ने उन पांच रुपयों के तरह-तरह के पटाखे खरीदे। परंतु बाबा ने वह सारा का सारा खुदरा एक भिखारी के कटोरे में उंडेल दिया। कटोरे में पड़े सिक्कों की खनक सुन कर भिखारी की आंखों में खुशी के आंसू छलक आये। बाबा की आंखों से भी झरझर आंसू बहने लगे। इस भिखारी को कभी-कभी आठ-आठ दिन तक खाना नसीब नहीं होता। एक-एक रोटी के लाले पड़े होते और उनके घर दूध की नदियां बहती हैं, अन्नपूर्णा मिट्टी में लोटती हैं। जिंदगी की यह विभिन्नता देख बाबा काफी परेशान रहते।

चौदह-पंद्रह वर्ष की आयु में ही बाबा के पांवों में शनीचर समा गया। उन पर जैसे भ्रमण करने की धुन सवार हो गयी। उन्हें घूमना-फिरना अच्छा लगता। पिता को बिना बताये ही वे रवींद्रनाथ के शांतिनिकेतन हो आये। कभी नर्मदा का उद्गम स्थान देखने अमरकंटक चले जाते, तो कभी चंद्रपुर के घने जंगलों में बसे आदिवासियों की बस्ती में भटकते। उनका शिकार का शौक देख कर पिताजी ने उनकी सोलहवीं वर्षगांठ पर उन्हें स्टेनगन उपहार में दिया।

पिता ने अवकाश ग्रहण करने के बाद नागपुर में धरमपेठ में एक बड़ी कोठी बनवायी। बाबा की माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा अंग्रेजी रीति-रिवाजों के अनुसार संपन्न हुई थी। महाविद्यालीय शिक्षा नागपुर के हिस्लॉप महाविद्यालय में हुई। बाबा की जबरदस्त इच्छा थी कि डाक्टर बनें। लेकिन पिता के सामने उनकी एक न चली। पिता ने जबरदस्ती उनका नाम हिस्लॉप में लिखवाया। हिस्लॉप में अध्ययन करने हेतु बाबा घोड़ागाड़ी में बैठ कर जाते। करारा इस्त्री किया हुआ शानदार सूट, चमचमाते बूट, रुमाल—इस तरह बाबा का ठाट-बाट होता। वहां ईसाई वातावरण था। बाबा को बाइबिल का पीरियड अच्छा लगता। ईसा का बलिदान उनके दिल को छू लेता।

उम्र के इसी दौर में वे सशस्त्र क्रांतिकारियों की ओर आकर्षित हो गये। क्रांतिकारियों के शस्त्र छिपाना, उनके संदेश पहुंचाना आदि कामों में बाबा सहायता करते। भगत सिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि से संबंधित खबरों में तथा उनकी साहसपूर्ण गतिविधियों में वे गहरी रुचि लेते। आगे चल कर इन तीनों क्रांतिकारियों को फांसी की सजा हो गयी।

उस समय बाबा नागपुर की एक रईस बस्ती—सिविल लाईंस में रहते थे। तरह-तरह के अंग्रेजी फैशन के कपड़े पहनना, अंग्रेजी फिल्में देखना, शिकार पर जाना आदि सारे रईसी शौक थे उनके। महाविद्यालय आने-जाने के लिए पिता ने उन्हें एक सिंगल स्पोर्ट्स कार दी थी। जिंदगी आराम से कट रही थी। अब बाबा अंग्रेजी फिल्में देख कर उन पर आलोचना भी लिखने लगे थे। उन्होंने प्रचुर मात्रा में अंग्रेजी साहित्य पढ़ा। फिल्में देखना, कार में बैठ कर सैर-सपाटे करना, शिकार खेलना- इसी में पूरा साल गुजरता, पर आखिरी दो महीनों में डट कर पढ़ाई करते हुए बाबा परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाते। इसी प्रकार बाबा ने वकालत की डिग्री प्राप्त की। पिता की हार्दिक इच्छा थी कि बाबा वकालत करें, अतः मध्य प्रदेश के जाने-माने देशभक्त तथा फौजदारी वकील श्री विश्वनाथ तामस्कर के साथ छत्तीसगढ़ स्थित दुर्ग जिले में बाबा ने वकालत शुरू की। लेकिन उनके सामने यही प्रश्न खड़ा रहा कि वकालत करके अपराधियों को छुड़ाने में समय एवं बुद्धि का व्यय करना कहां तक उचित है? इसी प्रश्न को मन में समेट कर वे वरोड़ा वापस लौटे और किराये का भकान लेकर वहीं पर वकालत करने लगे। साथ-साथ अपनी खेतीबाड़ी की भी देखभाल करने लगे।

सन् 1936 से ही महात्मा गांधी वर्धा जिला स्थित सेवाग्राम में रहने आये हुए थे। बाबा के नागपुर कालेज के एक मित्र—पु. भा. भावे हिंदू महासभा के नेता बन चुके थे। एक अन्य मित्र वा. कृ. चोरघडे वर्धा में अध्यापक थे। अब बाबा के दिलोदिमाग पर जमा हुआ सशस्त्र क्रांतिकारियों का प्रभाव फीका पड़ने लगा और गांधीवाद का आकर्षण बढ़ने लगा। बाबा के जीवन का वरोड़ा में लौट कर वकालत करने के पश्चात् का समय (1940-1942)

बहुत ही भागदौड़ में बीता। इसी समय उनके जीवन में एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया। वरोड़ा के आई.सी.एस. श्री रा. कृ. पाटील ने कलेक्टर की नौकरी से इस्तीफा दे दिया। अब बाबा भी गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों पर ध्यान देने लगे। वे भंगी, चमार, कातकरी (एक आदिम जाति), मजदूरों की सहकारी संगठन बनाने लगे। वकालत के माध्यम से भी गरीबों की सहायता करने लगे। उनके रहन-सहन में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आ गया। देश की खातिर कठोर व्रत की साधना का श्रीगणेश हो गया, जीवन की दिशा बदली, रंग बदला। टाई, सूट-बूट को उतार कर वे खादी का कपड़ा धारण करने लगे। चरखा, आश्रम की प्रार्थना, एकादशी व्रत का पालन ध्यानपूर्वक करने लगे तथा मिर्च- मसाला, घी, चीनी से रहित नपेतुले आहार को अपने दैनिक जीवन का अंग बनाया।

इसी समय एक विचित्र घटना घटी। रेल के एक ठसाठस भरे डिब्बे में गोरे फौजी ने किसी नयी नवेली भारतीय ग्रामीण दुलहन से छेड़छाड़ की। उसी डिब्बे में बैठे बाबा से यह सहा नहीं गया। उन्होंने आव देखा न ताव, उस फौजी पर टूट पड़े। वे जख्मी तो हुए पर उस लड़की को उस दरिंदे के चंगुल से बचा लिया। इस घटना का पूरा ब्योरा वर्धा स्थित श्री वालूंजकर द्वारा गांधीजी तक पहुंच गया। गांधीजी ने बाबा के अदम्य साहस एवं निर्भीकता की भूरि-भूरि प्रशंसा की—"ऐसे ही नौजवानों की आज देश को जरूरत है।" उन्होंने बाबा को "यह तो अभय साधक है" कहते हुए दिल खोल कर आशीर्वाद दिया।

आगे चल कर बाबा ने 'भारत छोड़ो आंदोलन' में भी हिस्सा लिया। उन्हें इक्कीस दिन की सजा हो गयी। उन्हें चंद्रपुर स्थित जेल में रखा गया। अब संपूर्ण गांधीवादी सत्याग्रही के रूप में बाबा

की पहचान होने लगी। इसके पश्चात् सन् 1942 के आंदोलन से लेकर 1946 तक का कालखंड बाबा ने हिमालय में साधु-संन्यासियों की खोज एवं गुफाओं के अन्वेषण में बिताया। किंतु अंत में भूखे-प्यासे, पीड़ितों, दीन-दुखियों की मदद करना, यही सच्चा कर्तव्य है, धर्म है, इस विचार की ओर बाबा का रुझान होने लगा। उन्होंने जान लिया कि दलितों की सेवा में ही भगवान की पूजा है। वैसे उनकी वकालत जारी ही थी।

विवाह

इसी कालखंड में बाबा के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण घटना घटी। नागपुर के घुले शास्त्री के परिवार के साथ उनके घरेलू संबंध थे। वहां उनका आना-जाना रहता। वहीं उनकी मुलाकात इंदु घुले से हुई। धीरे-धीरे इंदु घुले के साथ उनका पत्र व्यवहार भी शुरू हो गया। उसका सेवाभाव, स्नेहशील, परिश्रमी स्वभाव बाबा को भा गया। इंदु ने भी उनकी भावना का आदर किया। दोनों विवाह के लिए तैयार हो गये। लेकिन इंदु की माताजी ने इस विवाह का कड़ा विरोध किया, क्योंकि उनके मातृ-हृदय को यह संदेह था कि बाबा जैसे सनकी, झक्की व्यक्ति के साथ विवाह करके अपनी लाडली बेटी सुखी रहेगी या नहीं। परंतु इंदु अपने निश्चय पर अडिग थी।

एक दिन घुले की हवेली में कुछ चोर घुस आये। संयोगवश वहां उपस्थित बाबा ने आव देखा न ताव,उन चोरों पर आक्रमण कर दिया। उस हाथापाई में बाबा गंभीर रूप से घायल हो गये।

18 दिसंबर 1946 को बाबा का विवाह संपन्न हुआ। बाबा के शरीर पर अनेक घाव थे, सिर पर पट्टियां बंधी थीं, फिर भी शादी की तारीख आगे बढ़ाना उन्हें मंजूर नहीं था। विवाह के सारे

संस्कार संपन्न करने के लिए उन्होंने अनुमति दी, परंतु उन्होंने किसी से भी उपहार नहीं स्वीकारा। सभी लोग बाबा को एक सनकी, झक्की आदमी समझते। क्योंकि वे हर बात का स्वयं अनुभव करते, बौद्धिक स्तर पर उसे तौलते, तब कहीं उसको स्वीकार करते। आगे चल कर यही जिद उन्हें अपने लक्ष्य तक पहुंचाने में सहायक बन गयी।

साधना देवी (पूर्वाश्रम की इंदु) के रूप में बाबा को गृहिणी, सखी, सचिव एवं स्नेहमयी पत्नी मिली और बाबा की गृहस्थी का आरंभ हो गया। उस समय साधना देवी की उम्र सिर्फ बीस बरस थी। अक्तूबर 1947 में उनके पहले पुत्र विकास का जन्म हुआ।

मित्रबस्ती–समुदाय का प्रयोग

अब बाबा से महार (अछूत), चमार, जुलाहे, ब्राह्मण–सभी जातियों के लोग मिलने आते। बाबा ने सोचा, इन सभी के साथ मिल कर 'मित्रबस्ती' अर्थात् समुदाय का प्रयोग करके देखें। बाबा ने इस प्रयोग का संकल्प लिया। परंतु उनके पास कमाई का कोई साधन नहीं बचा था। क्योंकि उन्होंने सन् 1938 में प्राप्त वकालत की डिग्री के टुकड़े-टुकड़े कर डाले थे ताकि भविष्य में कभी वकालत का मोह नहीं जागे। उनके इस संकल्प को पूरा करने में मदद के लिए उनके पुराने साथी महादेव आंबेकर, जो सन् 1940 से साये की तरह उनके साथ थे, श्री पावड़े वकील, श्री स्वान वकील, श्री खिस्ती आदि तथा कुछ अन्य साथी तैयार हो गये।

इस नये प्रयोग का आधार था गांधीजी की विचारधारा। इसमें समानता के साथ-साथ संयुक्त परिवार के विचार भी समाहित थे। तय यह हुआ कि ब्राह्मण से लेकर अछूत तक, सभी साथ-साथ

रहें, अपना-अपना व्यवसाय करें। साथ ही, सभी की आमदनी इकट्ठी करें तथा खर्च भी मिल कर करें, सभी की जरूरतें एक साथ पूरी हों।

वरोड़ा के मकान मालिक, जो जात-पात पर विश्वास करते थे, इस प्रयोग का अमल अपने घर में कराने के लिए राजी नहीं थे। तब मध्य प्रदेश के तत्कालीन मंत्री श्री रा. कृ. पाटील अपना घर देने के लिए तैयार हो गये। यह जगह वरोड़ा गांव से बाहर पांच मील की दूरी पर सात एकड़ जमीन पर थी।

बाबा जब सामूहिक जीवन के साम्य कुलीन श्रमाश्रम का प्रयोग कर रहे थे, तब विनोबाजी ने उन्हें सौ रुपये भेजे और लिखा—'यह एक फकीर की भेंट है, इसका दूध लेकर पीओ।'

श्रम यही मूल्य

प्रयोग का आरंभ तो हो गया पर जात-पात तोड़ने के इस प्रयोग से सारे संबंधी नाराज हो गये। बाबा ने अपनी पैतृक संपत्ति के अधिकार का त्याग कर दिया। कमाई का कोई साधन नहीं था। अतः उन्होंने निश्चय किया कि गांधी-विनोबाजी के साहित्य के साथ-साथ ग्रामीण कुटीर उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को बेचा जाये। दिनभर दर-दर घूम कर भी पैसे नहीं मिलते। रोज तड़के चार बजे उठना, कलेवा करना और ख़ेत पर काम करने निकल पड़ना, इस प्रकार बाबा अठारह-अठारह घंटे कोल्हू के बैल की तरह खटते थे और साधनाजी घर में रह कर आश्रम और रसोई संभालती थीं।

कुछ दिनों के बाद 'कोरगांवकर ट्रस्ट' की ओर से उन्हें थोड़ा-बहुत धन मिलने लगा। बाबा स्वयं उस धरती पर उगायी सब्जी की टोकरियां उठा कर बाजार में बैठते। थोड़ा-बहुत पैसा

आने लगा। साधनाजी ताड़ के पत्तों से झाड़ू, टोकरियां आदि बनाना सीखने लगीं। परंतु अति परिश्रम से बीमारी ने उन्हें घेर लिया। अतः इलाज के लिए उन्हें नागपुर भेजना पड़ा।

पैसों की तंगी, मलेरिया की बीमारी आदि समस्याएं तो थीं ही, साथ ही हर किसी को बंधन पसंद नहीं था। अतः श्रमाश्रम, मित्रबस्ती का प्रयोग असफल हो गया। परंतु बाबा ने हिम्मत नहीं हारी, न ही हार मानी। वे विनोबाजी की शरण में गये। विनोबाजी ने कहा, "निष्ठापूर्वक सेवा करो, प्रेम दो, फल प्राप्ति की आशा मत रखो। यह सत्य है, आज चलते-चलते आप लड़खड़ा कर गिरेंगे परंतु कल इसी अनुभव के बलबूते पर दौड़ने लगेंगे। आपके हाथों महान कार्य संपन्न होगा।"

अनोखी गृहस्थी

बाबा की गृहस्थी असाधारण थी। जंगल की कुटिया में इसका श्रीगणेश हुआ। 'परिश्रम' ही बाबा के जीवन का मूलमंत्र था। उन्होंने कठोर परिश्रम से कुएं खोदे, खेती की भूमि तैयार की। बाबा ने हल पकड़ा और साधनाजी ने बुआई की।

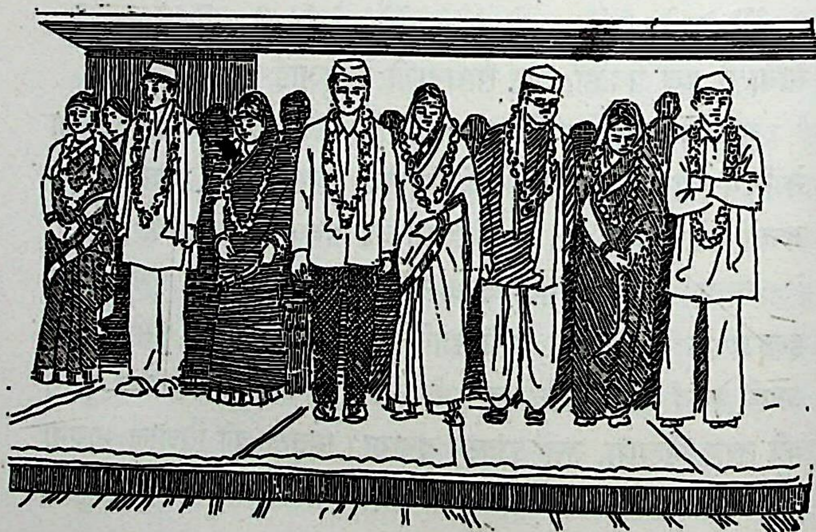
कुष्ठरोग की विस्तृत जानकारी तथा प्रशिक्षण प्राप्त करके बाबा ने निर्भयतापूर्वक कुष्ठरोगियों की सेवा करना आरंभ किया। इससे बच्चों को अपने आप ही निडरता का सबक मिलने लगा।

बाबा ने कुष्ठरोगियों के ढ़लते आत्मविश्वास एवं पुरुषार्थ के इलाज के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक परीक्षण किये। उसी प्रकार अपने स्वयं की औलादों को भी ऐसे वातावरण में रख कर कुंदन की तरह निखारा, उन्हें डाक्टर बनाया। मातृत्व की विशाल भावना से 'अनाथ' बच्चों को भी ममता-प्यार देकर आनंदवन में 'गोकुल'

का निर्माण किया। स्वयं साधनाजी इस गोकुल की माता हैं। साझी संवेदना ही आनंदवन वासियों का धर्म है और यही आमटे परिवार की दी हुई शिक्षा है।

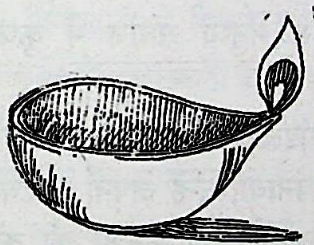
प्रचलित नजरिये से देखा जाये तो साधनाजी की गृहस्थी निजी नहीं है। वही ग्रहण करना जो सभी को मिलता है—यह तत्त्व मूलभूत आवश्यकताओं तक जड़ पकड़ चुका है। उनके दोनों पुत्र, बहुएं और पोते भी उनके साथ खुले दिल से समरस होकर यही परंपरा चला रहे हैं। उनकी गृहस्थी में दो पीढ़ियों के बीच फासले का कभी अहसास ही नहीं होता। सभी कार्यकर्ता, युवक-युवतियां साधनाजी की ममता भरी छांव में सहजतापूर्वक पले-बढ़े हैं। सरकार ने साधनाजी को 'दलित मित्र' की उपाधि से सम्मानित किया है।

हर महान हस्ती के जीवन में, उसकी कार्यशीलता में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। साधनाजी के संबंध में यह सोलह आने सत्य है। क्योंकि बाबा की जीवन-साधना में उन्होंने न केवल



सक्रिय सहयोग दिया अपितु उन्हें प्रेरणा देने का कार्य भी किया है। बाबा जैसे एक फक्कड़, मस्त कलंदर को सही दिशा दिखाने का, उनकी पथप्रदर्शिका बनने का विकट कार्य उन्होंने किया है। इसीलिए बाबा के मन में अपनी धर्मपत्नी के लिए बहुत आदर है।

बाबा की हर जानलेवा बीमारी में साधनाजी को कई-कई संकटों का सामना करना पड़ा है। परंतु उनकी ईश्वर निष्ठा, समाज निष्ठा तथा पतिपरायणता उन्हें अपूर्व मनोबल प्रदान करती है। उन्होंने ही बाबा से अनुरोध किया कि रोगमुक्त कुष्ठरोगियों का परस्पर अनुमति होने पर विवाह करवाया जाय। आनंदवन में भी उन्होंने पारिवारिक सुख की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।



सेवा का प्रेरणा स्रोत

कुष्ठरोगियों से घृणा उतनी ही पुरानी बात है जितनी यह दुनिया। सदियों से कुष्ठरोगी अकेला ही दर-दर की ठोकरें खाता घूम रहा है। एक दिन एक कुष्ठरोगी ईसा के सामने खड़ा हो गया। ईसा मसीह ने सहजतापूर्वक उसे अपने निकट खींच लिया और उसका माथा चूम कर कहा, "इस समाज ने तुम्हें भले ही खारिज कर दिया हो, तथापि ईश्वर के निकट तुम्हें स्थान है," इस प्रकार कुष्ठरोगियों के अस्त-व्यस्त, वीरान, उजाड़ जीवन को ईसा ने तरावट दी। ईश्वर का कोढ़ियों से जो प्रेम था, उसे ईसा ने बड़े मार्मिक ढंग से साकार किया, फिर भी इस मनुष्य समाज में कुष्ठरोगी अकेला एवं बहिष्कृत ही रहा।

परंतु जब इस लाइलाज रोग से विकलांग बने परचुरे शास्त्री को महात्मा गांधी ने अपनाया, उन्हें अपनी कुटिया के निकट आश्रय दिया, तब उन्होंने समाज की करुणा की कोख में इस अभागे कुष्ठरोगी को स्थान दिलवाया। अतः बाबा आमटे का प्रेरणा स्रोत गांधीजी हैं।

विनोबा की प्रेरणा

परंतु मात्र प्रेम और करुणा से गिरा हुआ मनुष्य खड़ा नहीं रह सकता। दया और दान उसे निकम्मा बनाते हैं। विनोबाजी ने उसके

पुनरुत्थान का मार्ग पहचाना था। बाबा ने सोचा, विनोबाजी मानवीय जीवन का गौरव बल हैं, जो जीवन भर के शारीरिक परिश्रम से तप कर सोना हो गया है। जिस दिन धान की रोपाई के लिए कुष्ठरोगियों के साथ घुटने-घुटने कीचड़ में उतरे, उस दिन दत्तपुर में इस संत महात्मा ने मानो कुष्ठरोगियों के भावी पराक्रम की यशोगाथा ही उनके हाथों में सौंप दी।

विनोबाजी एक महान संत थे, क्योंकि वे ऐसे जीव-प्राणियों के साथ सामूहिक जीवन जी सकते थे जिनकी सुंदर नासिकाएं मात्र दो छिद्रों के रूप में ही अस्तित्व में हैं; उपेक्षा, लापरवाही के कारण जिनकी उंगलियां गल गयी हैं, अस्थिमांस सड़ चुका है। बाबा के अनुसार, विनोबाजी गांधीजी से भी एक कदम आगे ही थे, अतः उन्हीं की प्रेरणा से बाबा ने कुष्ठरोगियों की प्रत्यक्ष सेवा-टहल का श्रीगणेश किया।

एक दिन बाबा विनोबाजी से मिलने गये। तब विनोबाजी ने पूछा, "बाबा, आप कवि हैं, लेखक हैं या सेवक?" बाबा ने कहा, "मैं भूमिपुत्र किसान हूं।" विनोबा ने कहा, "सच है, आप किसान हैं, इसीलिए तो श्रेष्ठ, स्तरीय साहित्य का निर्माण कर सकते हैं।" उन्होंने आगे पूछा, "भई, इतने संकटों, दुखों, कठिनाइयों के पहाड़ उठा कर भी आपका चेहरा मुस्कान से खिला-खिला कैसे रहता है?" बाबा ने कहा, "आप ही की 'गीताई' (विनोबाजी द्वारा भगवद्गीता का मराठी में किये गये अनुवाद-पुस्तक का नाम) का असर है यह। उसी की प्रेरणा मेरे नस-नस में समा गयी है।"

अभय साधना

वकालत में उच्च श्रेणी से प्रतिष्ठा प्राप्त करने के पश्चात् भी गांव

की सफाई, रास्ते झाड़ना-बुहारना, हरिजनों का संगठन, श्रमजीवी मजदूर वर्ग की सहकारी संस्थाएं आदि कार्यों में बाबा ने अपने आप को समर्पित किया था।

सफाई कर्मचारियों के हड़ताल के दिनों में पाखाने का मैला सिर पर ढोने का काम बाबा करते थे। एक दिन धुआंधार बारिश में सिर पर मैले की टोकरी उठा कर ले जाते समय उन्हें कूड़े के डिब्बे में कुछ हरकत होने का अहसास हुआ। निकट जाकर देखा तो सड़ा-गला अस्थिमांस का लोथड़ा बना एक रोगजर्जर कुष्ठरोगी पड़ा था। इस दृश्य ने बाबा के मन में खलबली मचा दी। बारिश से बचने के लिए अपने शरीर पर ओढ़ा टाट का टुकड़ा उन्होंने उसके बदन पर फेंका। परंतु बाबा पसीने से तरबतर हो गये। पसीने से नहा कर वे ज़ैसे-तैसे घर पहुंचे और स्नानागार में जाकर अपने देह पर धड़ाधड़ पानी उंडेलने लगे। फिर भी मन की अकुलाहट, जलन, छटपटाहट रत्ती भर भी कम नहीं हुई। स्नानगृह से निकलते ही वे एकदम से फूट-फूट कर रो पड़े। सिर पर मैले की टोकरी ढोते समय भी उन्हें उतनी घिन नहीं आयी जितनी उस कुष्ठरोगी की दुर्दशा देख कर। रात भर बाबा छटपटाते रहे, बेचैनी से करवटें बदलते रहे।

दूसरे दिन वे उस कुष्ठरोगी को, जिसका नाम तुलसीराम था, देखने गये, परंतु वह अभागा ठंडा पड़ चुका था। लेकिन उस कुष्ठरोगी की मौत के क्षण से बाबा के मन से कुष्ठरोगी संबंधी सारा भय दूर हो गया और उनकी 'अभय साधना' का आरंभ हो गया।

उन्होंने दत्तपुर का 'कुष्ठधाम' और अमरावती स्थित डा. शिवाजी राव पटवर्धन का 'तपोवन' देखा। कुष्ठरोग विशेषज्ञ डा. वारदेकर से निकट संबंध जोड़े। यह पढ़ कर कि फादर डेमियन

ने कुष्ठरोगियों को फिर से इंसान बनाया, उनके लिए गृह निर्माण किये, पहाड़ी झरनों पर नहर खोदे, अस्पताल और चर्च बनवाये—इस प्रकार वे एक असाधारण संत बन गये, बाबा पर जैसे एक अनोखी, अद्भुत धुन सवार हो गयी। कुष्ठरोगी तुलसीराम तो बिना कोई सेवा पाये ही परलोक सिधार गया, परंतु वही क्षण बाबा की सेवा कार्य का प्रेरणा-क्षण सिद्ध हुआ।

एक मुस्लिम कुष्ठरोगी वृद्धा 'श्रमाश्रम' के निकट रहती थी। बाबा ने उसकी सेवा की और उसने बाबा की गोद में अंतिम सांस ली। बाबा को इस सच्चाई का पूरा-पूरा भान था कि कुष्ठरोगियों की सेवा करना तलवार या बंदूक चलाने से भी अधिक कठिन है, शेर का शिकार करने से भी अधिक खतरनाक है। उन्होंने विनोबाजी का आशीर्वाद लेकर इस कार्य का श्रीगणेश किया।

महारोगी सेवा समिति की स्थापना

सन् 1949 में उन्होंने वरोड़ा में महारोगी सेवा समिति की स्थापना की। पास-पड़ोस के कुष्ठरोगियों की सेवा का कार्य शुरू हुआ। उपचार, प्रशिक्षण, पुनर्वसन—इस प्रकार प्राथमिक रूप में कार्य करते-करते दत्तपुर में प्रशिक्षण प्राप्त करने का विचार कर ही रहे थे कि साधनाजी ने फिर से खटिया पकड़ ली। उनके उपचार की उचित व्यवस्था करके बाबा ने सन् 1950 में कलकत्ता के 'स्कूल आफ ट्रापिकल मेडिसीन' से कुष्ठरोग में विशेष पाठ्यक्रम का प्रशिक्षण पूरा किया। इस अवधि में ही बाबा ने अपने शरीर में कुष्ठरोग का प्रयोगात्मक प्रतिबंधक टीका लगवाया। एक स्वस्थ, हट्टे-कट्टे युवक द्वारा, जिसे दो नन्हें-नन्हें प्यारे-प्यारे बच्चे थे, बीबी थी, दिखाया गया यह साहस वाकई

अनोखा था। लौटते समय बाबा बंगाल स्थित पुरुलिया की कुष्ठरोग बस्ती में भी रहे और अपना प्रशिक्षण पूरा किया। परंतु इस प्रशिक्षण के दौरान घोर परिश्रम एवं खाने-पीने के कष्टों एवं लापरवाही से बाबा तपेदिक का शिकार हो गये। नागपुर मेडिकल कालेज में दो महीने उन्होंने विश्राम किया, परहेज का पालन किया, तब कहीं वे रोगमुक्त हुए।

बाबा एक महान प्रयोगकर्ता हैं। "मेरी देह में कुष्ठरोग का लासा डाल के देखो", कहते हुए उन्होंने निर्भीकता से अपना शरीर आगे बढ़ाया। बाबा के जीवन की यह एक अद्भुत घटना है। कोई साधारण आदमी, जो सिर्फ जीवन के फुरसत के क्षणों में ही कुष्ठरोगियों के बारे में सोचता है, इसकी कल्पना मात्र से ही उसके छक्के छूट जाते। परंतु कुष्ठरोगियों की सेवा की प्रेरणा बाबा को महात्मा गांधी द्वारा एक कुष्ठरोगी परचुरे शास्त्री की सेवा से मिली थी। मनोहर दिवाण के दत्तपुर स्थित कुष्ठधाम से, विनोबाजी के सत्संग से उनमें कुंदन-सा निखार आ गया।

बाबा इस विचार से कभी भी सहमत नहीं थे कि रोगी के रूप में कुष्ठरोगी आये और रोगमुक्त होने पर भी आहत मन से बहिष्कृत जीवन जीये। इस विचार से उनके लिए कुछ न कुछ काम निकाल कर वे उनका स्वाभिमान जीवित रखते हैं। कुष्ठरोगी को रोगमुक्त तो होना चाहिए परंतु समाज में मनुष्य होने के नाते उसे प्रतिष्ठा भी मिलनी ही चाहिए—इस पर बाबा अधिक जोर देते हैं। वे कुष्ठरोगी को शारीरिक के साथ-साथ मानसिक रूप से भी स्वस्थ करते हैं। उनकी करुणा रोगी की असहायता में उनकी देखभाल तक ही सीमित नहीं है। वह रोगी में जीने की चाहत और आत्मविश्वास निर्माण हेतु सतत प्रयास करते रहते हैं।

'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन'—हमारी इस परंपरागत धारणा को बाबा ने परे हटाया और इस प्रकार वातावरण निर्मित की कि इन कुष्ठरोगियों से भी समाज कुछ सीखे, जिनका शरीर तो रोगी है पर मन स्वस्थ है, रोगमुक्त है। बाबा का मानना है कि शारीरिक से अधिक समाज के लिए 'मानसिक कुष्ठरोग' अधिक भयंकर है।

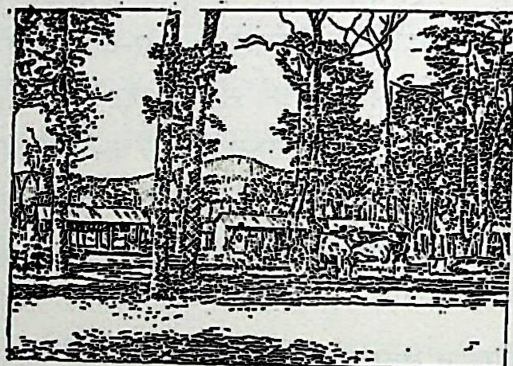
सेवा की विशेषता

बाबा की सेवा की दूसरी विशेषता यह है कि वे कुष्ठरोगियों को ही कुष्ठरोगियों की सेवा करना सिखाते हैं। धीरे-धीरे पुराने रोगी ठीक होते जाते हैं और नये रोगियों की सेवा में जुट जाते हैं। कुष्ठरोगी के रूप में दाखिल हुआ व्यक्ति दो-तीन वर्षों के बाद परिचारक बन कर काम करने लगता है। बाबा की यह योजना होती है कि उनके लिए बाहर से मंगाये हुए वेतन प्राप्त कर्मचारियों की आवश्यकता न पड़े।

बाबा आमटे ने सेवा और करुणा जैसे शब्दों को एक नया अर्थ, नया आयाम दिया। इस वजह से लोग उन्हें पूजनीय एवं सेवा का प्रेरणा स्रोत समझते हैं। बाबा की यह क्रांतिकारी भूमिका कुष्ठरोगियों को और साधारण जनता को भी प्रेरणादायी लगती है। उनके अनुसार, अपने देश में आदिवासी एवं कुष्ठरोगियों की सेवा मात्र पुनर्वसन नहीं बल्कि एक ऐसा अभियान है जो निराशा को आशा में बदलता है।

यदि भारत के रग-रग में नवजीवन का लहू सनसनाता रहे, यही हमारी मनोकामना हो, तो कुछ ऐसी परिस्थितियां निर्मित करनी होंगी कि इस देश में एक भी कुष्ठरोगी उपचार रहित न रहे। असली कुष्ठरोग है मलिन मन। इसीलिए बाबा ने कुष्ठरोगियों की

मात्र सेवा ही नहीं की, उनके लिए अपने अधिकार का 'स्नेह-सदन' बनवा कर गृहस्थ जीवन भी दिया। इस कार्य की सीमा सेवाव्रत से भी बड़ी है। मात्र एक मनुष्य के रूप में नहीं, बल्कि समाज के एक सक्रिय घटक के रूप में बाबा ने उसे समाजिक जीवन में दाखिल किया।



आनंदवन

मार्च सन् 1951 में तत्कालीन मध्य प्रदेश के मंत्री श्री रा. कृ. पाटील के सहयोग से बाबा को वरोड़ा के पास सरकारी जमीन प्राप्त हो गयी। छह कुष्ठरोगी, जो दत्तपुर स्थित कुष्ठधाम में रोगमुक्त हो गये थे, एक लंगड़ी गाय के साथ साधनाजी तथा नन्हे-मुन्ने विकास-प्रकाश का हाथ थाम कर बाबा ने कार्य का श्रीगणेश किया। यह गांव से दूर वीरान व बंजर भूमि थी। बाबा ने स्वयं कुष्ठरोगियों के साथ जंगल की सफाई, खेत जोतना, कुआं खोदना आदि काम किये।

बाबा को अहसास हुआ कि इन्हीं के साथ रहना, जीना, काम करना आवश्यक है। बाहर रह कर अथवा इनसे दूर रह कर यह काम नहीं हो सकता। अतः बाबा उन्हीं के साथ उन्हीं के स्तर का जीवन जीने लगे—अपनी सुखासीन, ऐशोआराम की जिंदगी को त्याग कर। इससे पहले बाबा चमड़े के चप्पल पहनते थे, परंतु जब उन्हें पता चला कि रोगियों के लिए चमड़ा अनुचित है, टायर अथवा रबड़ की चप्पल ही उनके काम आ सकती है, तब बाबा ने टायर के चप्पलों का ही प्रयोग करना शुरू किया।

साधनाजी कुटिया में छोटे-मोटे काम करके एवं सभी का भोजन तैयार करके अपना घर-गृहस्थी चलाने में खुश थीं। इस विकट,

कठोर जीवन में छोटे विकास-प्रकाश भी प्रसन्नता पूर्वक हंसते-खेलते रहते।

पहली फसल

जमीन तैयार हो गयी और उस पर आनंदवन की खेती खड़ी रही। आगे चल कर साथ में खेती के औजार आ गये और बाबा को कृषिशास्त्र का ज्ञान हो गया। रोगियों में आत्मविश्वास पनपते देख कर बाबा फूले न समाये। बाबा की यह सोच—रोगी इस धरती पर सोना उगा लेंगे, यह धरती उनके लिए हीरे-मोती उगलेगी—सफल हो गयी। रोगियों के चेहरों पर खिला-खिला हर्ष और उल्लास देख कर बाबा ने इस परियोजना का नाम 'आनंदवन' रखा।

हल और बैलों के बिना गैंती, कुदाल, खुरपी से छील कर पंक्तियां जोतना तथा उनमें बीज रोपना—इस प्रकार आनंदवन की पहली रोपाई रोगियों के हाथों से पूरी हो गयी। नरम-नरम कोमल पल्लवी फूट गयी। पौधे उगे और बढ़ते-बढ़ते लहलहाने लगे। फसल की कटाई हो गयी और इस प्रकार आनंदवन की पहली फसल तैयार हो गयी। अपना पसीना बहा कर अपने लूले हाथों से रोगियों द्वारा उगाया हुआ वह सोना-हीरे-मोती देख कर बाबा की छाती गर्व से चौड़ी हो गयी।

अगले वर्ष हल-बैल आ गये और भूमि पर खेती-बाड़ी की गयी। इस बार फसल में वृद्धि हुई। परंतु उस फसल का सुख कुछ अलग ही था। कुष्ठरोगियों ने कहा, "बाबा, हम सोच रहे थे कि हाथ-पैरों की उंगलियां सड़-गल गयीं—अब केवल मरना ही बाकी रहा, परंतु आपने तो हमारे इन हाथों से सोना उगवा लिया—ये भुट्टे के पीले-पीले दाने...!"

21 जून 1951 के दिन विनोबाजी भूदान पद यात्रा के लिए रवाना हो गये थे। उससे पहले उन्होंने आनंदवन का उद्घाटन किया। उन्होंने अति प्रसन्न होकर कहा, "सदैव लाचारी का भिक्षापात्र लिए घूमते हुए कुष्ठरोगियों के हाथों से भीख का कटोरा छीन कर श्रद्धामयी सेवा का रामायण रचाया, इसीलिए निश्चय ही यह आनंदवन नंदनवन बनेगा।"



शुरू-शुरू में बाबा को अनेक प्रकार के अनुभवों का सामना करना पड़ा। कुष्ठरोगियों के हाथ का दूध नहीं चाहिए, इस प्रकार गांव में उन्हें खारिज किया जाता। तब स्वयं साधनाजी तथा बाबा ने दूध दूह कर यह अड़चन दूर की और लोगों का आनंदवन से संपर्क टूटने नहीं दिया। एक दिन गांव के एक सेठ ने भिखारी- भोजनार्थ कुष्ठरोगियों को निमंत्रित किया। परंतु बाबा कुष्ठरोगियों को ले जाने के बदले स्वयं धूलभरी सड़क पर बैठे लोगों की पंक्ति में जा

बैठे। सेठजी शर्म के मारे पानी-पानी हो गये। फिर उन्होंने घर के सभी सदस्यों को लेकर बाबा की पंक्ति में बैठ कर भोजन किया। इस प्रकार बाबा ने अनेक घटनाओं का सामना करके रास्ता ढूंढ़ निकाला ताकि कुष्ठरोगियों का स्वाभिमान सतत जागृत रहे।

सन् 1954 से आनंदवन सभी तरह से फलने-फूलने लगा। तेल के कोल्हू, डेयरी तथा खेती शुरू हुई। आनंदवन का कायाकल्प हो गया। हरे-भरे लहलहाते खेत, सब्जियों की घनी क्यारियां, फल-फूलों से लदे-फदे वृक्ष, आधे दर्जन खोदे हुए कुएं, आपस में कनबतिया करती कुटियों का घना समूह, कुष्ठरोगियों के पुनर्वास हेतु मूलभूत तथा प्राथमिक आवश्यकता संबंधी सावधानी बरतना— सारा कुछ अद्‌भुत था। तिस पर कुष्ठरोगियों की एक अलग मनोवृत्ति देख कर दिल बाग-बाग हो उठता है। अपनी विरूपता के कारण उनकी हमेशा जो फजीहत होती, जिससे उनका दिल खट्टा होता, उसका यहां नामोनिशान तक नहीं था। यहां दिखायी देती— रोगियों की अपना सर्वस्व न्योछावर करने की आस्था और छटपटाहट। रोगियों की आपसी सहानुभूति देख कर मन को बड़ा सुकून मिलता। वाकई, आनंदवन ने इन कुष्ठरोगियों का व्यक्तित्व उभारा था। उनके मन में मनुष्य होने का अहसास जगाया था।

अशोकवन

आनंदवन के अतिरिक्त बाबा ने सन् 1957 में नागपुर से 15 किलोमीटर दूरी पर 120 एकड़ भूमि खरीदी थी। उस समय उस जगह के आसपास दारू की हाथभट्ठियां, आबकारी धंधा चलानेवाले गुंडे-दादा लोगों का बहुत उपद्रव था। परंतु बाबा ने सभी कठिनाइयों को मात देकर वहां कुष्ठरोगियों को बसाया। उजाड़, वीरान और

बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया, सब्जियां लगवायीं। सन् 1957 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा प्राप्त दान से उन्होंने यह भूमि खरीदी।

यहां भी दवाखाना, आवास, पशुशाला तथा एक विशाल दालान का निर्माण किया गया। अशोकवन में भी कुष्ठरोगियों के लिए बाह्य उपचार विभाग (ओ.पी.डी.) शुरू है। यहां 96 एकड़ भूमि उत्पादन एवं खेती के हेतु उपयोग में लायी गयी है। चार कुएं भी खोदे गये हैं।

आनंदवन में डा. विकास आमटे, सोमनाथ में शंकर दादा जुमड़े तथा हेमलकसा में डा. प्रकाश आमटे जिस तरह चौबीसों घंटे रहते हैं, वैसे यहां कोई भी नहीं रहता,तथापि कुष्ठरोगियों को पुनः बसाने का कार्य कृषि परियोजना द्वारा यहां भली भांति जारी है। लगभग सौ मरीजों के रहने का प्रबंध यहां किया गया है।

सन् 1957 में आनंदवन में बिजली आ गयी, प्राथमिक स्कूल खुला। बाबा ने वरोड़ा में कुष्ठसेवा कार्य का आरंभ किया था। सन् 1957 में वरोड़ा के चारों ओर कुष्ठरोगियों का सर्वेक्षण करते हुए आसपास के तीस मील के क्षेत्र में इलाज के लिए लगभग ग्यारह केंद्र खोले गये। उनमें से लगभग चार हजार रोगी स्वस्थ होकर काम करने लगे। पुरानी स्मृतियों का भंडार खोलते हुए बाबा एक डाक्टर की कहानी कहते हैं—"वे बाहर से सहायता करने आते। परंतु अपने घर पहुंचते ही वे अपनी साइकिल भी धो-पोंछ कर कीटाणुरहित करते।" आगे चल कर काम बहुत बढ़ जाने के बाद बाबा ने 1960 में ये केंद्र बंद कर दिये।

मित्र मेला

मनुष्य के रूप में कुष्ठरोगी को समान व्यवहार एवं प्रतिष्ठा मिलना

उनका अधिकार है। मशीन की तरह उनका प्रयोग करना घोर अपराध है। इसीलिए बाबा कहते हैं, "किसी कुष्ठरोगी का खिला-खिला प्रसन्न चेहरा अथवा किसी विकलांग बालक के चेहरे पर बिखरी मधुर मुसकान, यही मेरा सच्चा पुरस्कार है।" बाबा को एक ही विचार बहुत परेशान करता है—किस तरह कुष्ठरोगियों के मन में जीने की उमंग और उनके जीवन में खुशी लायी जाये। आखिर बाबा को ज्ञात हुआ कि मात्र ममता भरा, प्यार भरा स्पर्श ही इन मनुष्यों के जीवन में आश्चर्यजनक परिवर्तन ला सकता है। अतः इन मरीजों के विषय में सोचने की बाबा की संपूर्ण दृष्टि ही बदल गयी।

इसमें से आनंदवन में मित्र मेला का विचार उन्होंने साकार किया। आनंदवन वासियों को जिस समाज ने बहिष्कृत करके दुतकारा था, उसी समाज को उन्होंने उनका पराक्रम, उनकी विविध कार्यों में कुशलता देखने के लिए निमंत्रित किया। उनमें विचारक, समाज सेवक, लेखक, देशभक्त, कृषि विज्ञानी आदि प्रसिद्ध हस्तियां थीं। सन् 1961 में आनंदवन में पहला मित्र मेला संपन्न हुआ।

इस प्रकार के मित्र मेले में मनोरंजनपरक कार्यक्रमों का भी कुष्ठरोगी छोटे-छोटे नाटकों के रूप में आयोजन करते। एक दिन भगवान कृष्ण पर आधारित एक नाटक में सुदर्शन चक्र का प्रसंग आ गया। कृष्ण की भूमिका निभाने वाले उस रोगी को सुदर्शन चक्र घुमाने के लिए अंगूठा ही नहीं था। ऐसे कई मार्मिक प्रसंग आते जिससे दिल में फफोले पड़ते, कलेजा छलनी होता। रोगियों के भगीरथ प्रयास से सभी बाधाओं को पार कर उन्होंने एक नाटक मंचित करके राष्ट्रीय सुरक्षा निधि में दो हजार रुपयों का अंशदान दिया।

अब आनंदवन में प्रति वर्ष नियमित रूप से मित्र मेला संपन्न होता है। संगीत के तालसुरों का एक समां बंध जाता है। कसरतों का प्रदर्शन, सामूहिक लेजिम नृत्य, जलते घेरे में से छलांग लगाने जैसी साहसी क्रीड़ाओं का प्रदर्शन अब रोगियों के लिए बायें हाथ का खेल है।

महाविद्यालय की स्थापना

सन् 1962 में आनंदवन में डाकघर खुल गया। उसी प्रकार रोगियों के परिश्रम से मुक्तिसदन भी खुल गया। सन् 1962 में विदर्भ के जाने माने समाज सेवक संत तुकडोजी महाराज की अध्यक्षता में उसका उद्घाटन हुआ।

वरोड़ा इलाके में एक भी महाविद्यालय नहीं था। अतः बाबा ने उनकी शिक्षा विषयक आवश्यकताओं पर गौर किया। अब तक आनंदवन के रोगी सभी तरह के कामकाजों में निपुण बनने का प्रयास कर रहे थे। उन्होंने ईंटें बनायीं, राज मिस्त्री का काम किया। बढ़ईगीरी, लुहारी, कुओं को गहराना, नलकों एवं बिजली के फिटिंग आदि जैसे कई कामों में वे पारंगत हो गये। इस प्रकार सभी तरह के काम करके सन् 1964 में उन्होंने आनंदनिकेतन महाविद्यालय की इमारत खड़ी की और उसे समाज को अर्पित किया। इसके पश्चात् विज्ञान, वाणिज्य एवं कृषि विद्यालय की स्थापना हो गयी। आज इन इमारतों में 1800 छात्र शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं और लगभग 83 प्राध्यापक पढ़ा रहे हैं।

संधिनिकेतन

सन् 1966 के आसपास अपंग-विकलांगों की समस्या का अध्ययन

करने के लिए रीडर्स डाइजेस्ट ने एक दौरे का आयोजन किया था। उनकी ओर से काऊंट तारकोवस्की आनंदवन में बाबा से मिलने आये थे। वे भी विकलांग थे जो व्हीलचेयर में बैठ कर घूमते थे। आनंदवन स्थित आनंदनिकेतन महाविद्यालय, गोकुल, कुष्ठरोगियों के बच्चों के लिए चलाया गया प्राथमिक स्कूल, मूक-बधिर-अंध विद्यालय, प्रशिक्षण संस्था, सहकारी औद्योगिक संस्था सारा कुछ देख कर उन्होंने तो दांतों तले उंगली दबा ली। उन्होंने कहा, "एशिया में विकलांगों के लिए जो परियोजनाएं हैं उनकी खोज मैंने की, परंतु इस प्रकार का पुनर्वसन का कार्य मैंने कहीं भी नहीं देखा जो यहां देख रहा हूं।"

तारकोवस्की जैसा एक विदेशी मनुष्य भी बाबा से प्रेरित हो गया क्योंकि तारकोवस्की के पास विकलांगों के लिए काम करने की परियोजनाओं का प्रयोग करने की उत्कट इच्छा थी, परंतु उनको उचित राह नहीं मिल पा रहा था। बाबा की सेवा के व्यापक दृष्टिकोण ने उन्हें बहुत प्रभावित किया और उनका उत्साह देख कर बाबा ने उनकी परियोजना की रूपरेखा तैयार करने में उनकी मदद की।

उन्होंने कहा, "यदि आप चाहते हैं कि आपकी योजना आत्मनिर्भर एवं सक्षम हो तो पच्चीस लोगों को व्यावसायिक प्रशिक्षण, उनके भोजन-पानी, रहने के लिए आवास—सभी की आवश्यकता होगी। उन्हें बुनाई, सूतकताई, चर्मोद्योग, बढ़ईगीरी, छपाई आदि सरीखे व्यावसायिक प्रशिक्षण के साथ-साथ खेती भी सिखाने होंगे। उसके लिए एक अधीक्षक एवं दैनिक कार्यों की देखभाल के लिए एक संपर्क अधिकारी भी तो चाहिए!"

अपने काम में बाबा की तीव्रता, लगन, तत्परता तथा साथ-साथ

सुगठित नियोजन देख कर वे प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "बाबा, आपने मेरे लिए इतनी सारी योजनाएं बनायीं, परंतु मेरे पास पैसा नहीं है, मैं यह कैसे करूं?" बाबा ने कहा, "भई, पैसे के लिए कोई काम नहीं रुकता।"

बाबा के बताये हुए 'मुक्तिसदन' और 'आनंदनिकेतन' इमारतों के बीचोंबीच बाबा ने उनकी इमारत की जगह निश्चित की, वहां इमारत की नींव भी खोदी गयी। एक निपुण, रोगमुक्त व्यक्ति से राज मिस्त्री के सारे काम की योजना भी उन्होंने तैयार करवायी थी क्योंकि उसी ने आनंदवन तथा सोमनाथ दोनों की इमारतें बनायी थी। डा. विकास ने वास्तुशिल्प के नक्शे तैयार करवाये थे। सारी बढ़िया तैयारी देख कर तारकोवस्की खुशी से झूम उठे। उनका कलेजा हाथ भर का हो गया। अपनी व्हीलचेयर पर बैठ कर वह हर रोज उस श्रमदान कार्य पर उपस्थित रह कर उसमें हाथ बंटाते। ये लोग जो अंग्रेजी का ए बी सी भी नहीं जानते थे, उन्हें अपने लगते।

भारत में भवन निर्माण कार्यों में प्रारंभ से एक खास परंपरा रही है। पुरुष भारी वजन के काम उठाते हैं, महिलाएं हलके-फुलके पत्थर, ईंटें, चूना, मिट्टी के तसले उठाती हैं। यह सब निश्चित किया हुआ होता है। तसले उठाये हुए सिर, तन कर चलना, सब कुछ एक लय में, एक ताल में चलता है। उनकी आकृतियां उन्हें किसी ग्रीक देवता के समान तराशी हुई प्रतीत होतीं।

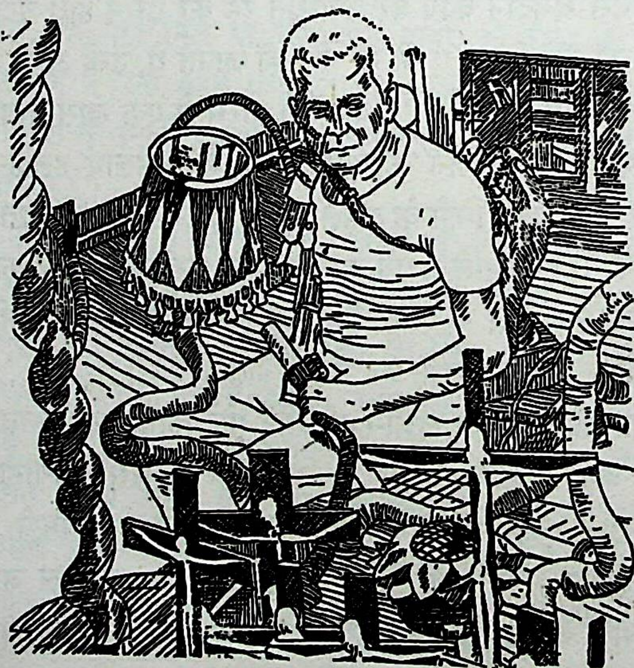
तारकोवस्की भी खुशी-खुशी छोटे-मोटे काम करने लगता। वह चूना घोलता, ईंटें पानी में डालता, पत्थर से भरी बैलगाड़ी में से छोटे-छोटे पत्थर चुनने लगता। उसके सुनहरे बाल मिट्टी से भर जाते। धूल से सने हुए चेहरे पर खुशियों के फूल खिल जाते।

बाबा की प्रेरणा से आनंदवन की पूरी बस्ती ने हाथ बटा कर

'संधिनिकेतन' खड़ा किया। तारकोवस्की वास्तु पूजा समारोह में भी उपस्थित रहा। वह सोचा करते, 'किस वजह से इन लोगों से मेरा नाता जुड़ गया है?' बस, एक ही नाता था जो उन्हें जोड़ रहा था—एक तीखी वेदना एवं गहरे दुख का नाता। अब आनंदवन में उनकी भी एक बिरादरी हो गयी है। वहां विलियम ब्लेक की एक कविता लिखी हुई है, जिसका अर्थ है—

मैंने आत्मा का शोध किया, पर उसे देख न सका
मैंने ईश्वर को ढूंढ़ा, पर वह मुझे नहीं मिला
पर जब मैंने अपने बंधु को ढूंढ़ा
तब मैंने तीनों को ही पा लिया।

यह कहा नहीं जा सकता कि कुष्ठरोग कैसे होता है, क्यों होता है, कब होता है। परंतु जब उस व्यक्ति को पता चलता है कि उसे



कुष्ठरोग हो गया है, तब उसे गहरा सदमा पहुंचता है। कारण यही कि वह जानता है कि समाज कुष्ठरोग से कितनी घृणा करता है। फिर वह अपना रोग छिपाता है, इलाज करवाने में टालमटोल करता है। इस प्रकार और भी अधिक समाज से दूर फेंक दिया जाता है। रोग से भी अधिक रोग पीड़ित से किया जानेवाला इस तरह का निष्ठुर, निर्मम व्यवहार अधिक भयंकर होता है। परंतु आनंदवन के संधिनिकेतन में उसे काम करने का अवसर मिलता है, उसमें वह रम जाता है। इस प्रकार का व्यावसायिक संबल साथ होने के कारण व्यवसाय द्वारा वह समाज की मुख्य धारा में शामिल होता है।

आज आनंदवन के संधिनिकेतन में अंधे, मूक, बधिर, विकलांग, कमजोर दिमागवाला, दुर्घटनाग्रस्त, पोलियो पीड़ित—सभी तरह के लोग मिलजुल कर काम करते हैं। इस तरह का उदाहरण दुनिया में बहुत कम ही दिखाई देता है।

एक सज्जन दस वर्षों से आनंदवन में रहते हैं। वह बढ़ईगीरी बढ़िया करते हैं। वे कहते हैं, "इधर किसी प्रकार का दुख नहीं है। मुझे मेरे अपनों ने दुतकारा, लताड़ा, अपमानित किया, परंतु आनंदवन ने मुझे गले लगाया।" संधिनिकेतन में विविध व्यवसाय प्रशिक्षण की सुविधा है।

इस संधिनिकेतन में पचास प्रतिशत बीज पूंजी है तथा पचास प्रतिशत श्रमदान है। बीज पूंजी के धन से निर्माण कार्य का सामान लिया जाता है और संपूर्ण आनंदवन वासी श्रमदान करते हैं। अतः यह एक प्रयोगशाला है। जिस तरह से सभी प्रकार के लोग मिलजुल कर यहां काम करते हैं वह दुनिया का एक अनोखा प्रयोग है। बाबा चाहते हैं कि इससे प्रेरणा लेकर लोग अपने-अपने स्थानीय क्षेत्रों में इसका प्रयोग करें।

गोकुल

एक दिन आनंदवन में कोई एक-दो दिन का अनाथ शिशु ले आया। बाबा तथा साधनाजी ने इस चुनौती को स्वीकार किया। साधनाजी ने उस बच्ची को नहलाया-धुलाया, दूध पिलाया। फिर उसका पालन-पोषण और 'चटावन' (अन्नप्राशन) संस्कार भी किया। उसका नाम 'धरती' रखा गया। धरती का आनंदोत्सव आनंदवन वासियों ने मनाया। धरती से आनंदवन और भी खिल उठा। इस प्रकार आनंदवन में बच्चों का 'गोकुल' बस गया। बाबा ने रोगमुक्त स्त्री-पुरुषों के उन्हीं की अनुमति से विवाह भी करवाये। सिर्फ उन पर संतति निरोध शल्य क्रिया (नसबंदी) करनी होती है। वे गोकुल निवासी बालकों का अभिभावकत्व खुशी से स्वीकार कर उन्हें माता-पिता की छाया देते हैं तथा वे गृहस्थाश्रम के जीवन को सहर्ष स्वीकार करते हैं। इस प्रकार बाबा की पुनर्वसन के विचार में कमाल की परिपूर्णता है।

सन् 1968 में उन्होंने विवाहित रोगियों के लिए 'सुखसदन' बनाया और वृद्धावस्था में रोगियों के रहने का प्रबंध करने के लिए 'स्नेहछाया' बनाया। सन् 1976 में श्री पु. ल. देशपांडे ने जो दान दिया, उसमें से 'मुक्तांगण' का निर्माण हो गया। अब उधर आनंदवन वासियों के लिए सभी प्रकार के सांस्कृतिक कार्यक्रम होते हैं।

बाबा ने कुष्ठरोगियों के केवल मानसिक एवं शारीरिक जीवन में ही प्राण नहीं फूंके, अपितु उनके भावनात्मक जीवन पर भी विचार किया।

सन् 1979 में 'स्विस-एड' की देन से आनंदवन में कृषिनिकेतन का निर्माण कार्य शुरू हुआ। वह सन् 1981 में पूरा

हो गया। इस प्रकार चिकित्सालय, रसोई घर, गोदाम, गो-शाला, गैरेज सभी का प्रबंध हो गया। वहां उद्योग भवन भी खड़ा हो गया है। नेत्रहीन-मूक-बधिर छात्रों के लिए छात्रावास, विकलांगों के लिए आवासगृह हैं। इतनी सारी संस्थाओं का जमावड़ा होते हुए भी आनंदवन में रोगियों का विशेष तरीके से श्रेणी विभाजन किया जाता है और उनका उचित ढंग से बड़ी सावधानी के साथ उपचार किया जाता है।

स्विटजरलैंड के पीयर ऑप्लीगर और तैंतीस देशों के पचास युवक-युवतियां तीन महीनों का अवकाश लेकर आनंदवन में श्रमदान हेतु इकट्ठे हो गये थे। ये पश्चिमी देशवासी उस संस्कृति से, जो मनुष्य को प्रकृति से अलग करती है, बिलकुल ऊब चुके थे। वे यहां पर इसलिए आये हुए थे कि भारतवासियों की तरह प्रकृति से नाता जोड़ सकें। कुदाल, फावड़ा, तसले संभाल कर उन्होंने भरपूर परिश्रम किया। इस 'सिविल सर्विस इंटरनेशनल' के श्रमदान से दो पक्की इमारतें खड़ी हो गयी थीं। बाबा का यह सुंदर-सलोना कुष्ठरोगियों की बस्ती देख कर ये विदेशी मेहमान काफी प्रभावित हुए।

'स्विस-एड' घोषित की गयी। उसमें से 'टिनकैन प्रोजेक्ट' के अंतर्गत डिब्बे, कनस्तर, छलनियां, लालटेन, छोटे डिब्बे, ढिबरियां आदि बनाना शुरू हो गया। स्विस लोगों ने जैसे इस बस्ती को गोद ही ले लिया। यहां के लोगों का अथक परिश्रम, रमणीय वातावरण, जिसे प्रकृति का साथ मिला है, सर्व धर्म समभाव, रोगियों की आपसी सहानुभूति—ये सब इस बस्ती के भूषण हैं।

आनंदवन में प्रकृति-सुरक्षा

जब विश्व भर में मानव संहार, हिंसाचार की भाषा बोली जा रही

थी, तब बाबा के आनंदवन में मानवीय प्रेम से, स्नेह से हजारों हाथ निर्माण कार्य में व्यस्त थे। सिर्फ चार-साढ़े चार सौ कुष्ठरोगियों ने लगभग दो सौ एकड़ भूमि पर विपुल फसल उगायी। अपने परिश्रमं से बनायी गयी हिमधवल ईंटों के घरों में वे रहते थे। आनंदवन के पोस्ट आफिस में पैसे जमा करके घर भेजते थे।

यहां केवल श्रेष्ठ स्तर की ही फसल निकाली जाती है। इतना ही नहीं, प्रयोग एवं संशोधन की सहायता से नया कृषितंत्र भी विकसित किया गया है। लकड़ी एवं कम्पोस्ट खाद के लिए ऐसे ही वृक्षों को लगाया गया है जो जल्दी-जल्दी बढ़ते हैं। ऐसे ही वृक्ष और लताएं लगायी गयी हैं जो भूमि की शक्ति बढ़ाते हैं। चारे के लिए विविध प्रकार की घास की बोआई की गयी है। अब तो यह अनुसंधान का मुख्य केंद्र बन गया है।

बाबा ने पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने के दृष्टिकोण से सन् 1984 में ही वनखेती अनुसंधान की परियोजना शुरू की थी। वनीकरण, खेती, सामाजिक वनीकरण आदि सारे मुद्दों पर गौर करके ही इस परियोजना पर अमल किया गया था। पिछले पांच वर्षों में आनंदवन में नीम, इमली, साग, बबूल, बांस आदि जैसे पैंतीस प्रकार के पेड़ लगाये गये हैं। आनंदवन में आवश्यक दूध की बारहों महीने आपूर्ति होती रहे, इसके लिए गाय, भैंस, बैलों के चारे (पशु चारा) के लिए बारह प्रकार के घासों की बोआई भी की गयी है।

इस परियोजना की ओर से नर्सरी (गाछ वाटिका) तैयार करके सरकार को नाम मात्र की दर से पौधों की आपूर्ति की जाती है। आनंदवन स्थित विविध महाविद्यालयों की ओर से छात्रों ने वन-वाटिकाएं तैयार की हैं। उनमें पच्चीस हजार सुबबूल के वृक्ष

हैं जो चालीस-चालीस फुट लंबे हैं। बाबा की यह धारणा है कि वृक्ष दया का प्रतीक है और उस पर रचे-बसे पंछी धीरज, प्रेम एवं समता के दूत हैं। इसीलिए बाबा वृक्षगंगा, वृक्षसमाधि, वृक्षयात्रा, बाल तरु की पालकी आदि जैसे पर्यावरण रक्षा एवं राष्ट्रीय जागरण कार्यक्रमों का विविध रूपों में आयोजन करते रहते हैं।

भूमि एवं जल का वैज्ञानिक ढंग से किया हुआ व्यवस्थापन तथा खेती की समुचित पैदावार का नियोजन—इन तीन सूत्रों के माध्यम से सूखा-निवारण का काम किया गया है। मौसमी फसलों को बहुवार्षिक पैदावार से जोड़ दिया गया है।

अब आनंदवन की 465 एकड़ जमीन खेती में लग गयी है। इधर सुधारित सिंचन पद्धति के अनुसार फसल उगायी जाती है। अनाज, तिलहन, तेल बीज, सब्जियां, फलवृक्ष, बीजोत्पादक कपास, मिर्ची, भिंडी आदि के अलावा नकदी फसलें—गन्ना, केला, रुई आदि भी निकाली जाती हैं। वनकृषि के लिए चार वर्षों में पचास एकड़ जमीन पर वनीकरण किया गया है। जंगली औषधियों की सुगंध से सारा परिसर महक उठा है। तिस पर फूलों की फुलवारियां भी लहलहाती हैं।

बाबा ने वन खेती के साथ-साथ ही आनंदवन में लकड़ियों का न्यूनतम प्रयोग करके बनाये हुए छोटे-छोटे परंतु सस्ते घरौंदों का प्रयोग भी सफल करके दिखाया है। श्री महमंद, प्रा. वि. म. कालपांडे, डा. विकास आमटे तथा आनंदवन के असंख्य कुष्ठरोगी बांधवों ने इस प्रयोग को सफल बनाने में भरपूर योगदान दिया है। राजस्थानी शैली के अर्धगोलाकार छत के घर आनंदवन में बनाये गये हैं। इस घरौंदे में लोहा एवं लकड़ी का प्रयोग नहीं किया गया है।

आनंदवन स्थित कुर्सी-मेज से लेकर पत्रलेखन सामग्री तक सभी वस्तुओं में कलात्मकता के दर्शन होते हैं। प्रेरणा बाबा की है पर मेहनत रोगियों की हैं। बाबा ने मनुष्य को ढूंढ़ा, उसे देखा-परखा और मानवता के सुंदर शिल्प गढ़े।

गो-पालन

गो-पालन कृषि विकास का एक महत्त्वपूर्ण आधार है। बिना गोबर-खाद के भूमि की उर्वरता टिकाये रखना असंभव है। उसी तरह भारतीय खेती में गाय-बैलों की अनिवार्यता पर गौर करते हुए डेयरी का विकास किया गया है। इस डेयरी के कारण ही 200 लोगों का भोजन बनाने के लिए आवश्यक बायोगैस का प्लांट बिठाना संभव हो पाया है। आनंदवन गो-रक्षा के संबंध में भी आगे है। आनंदवन में जिस प्रकार कुष्ठरोगी, विकलांग, अंधों को प्रेम से स्वीकार किया जाता है, उतने ही प्रेम से दान में मिली हुई बूढ़ी, विकलांग गाय को भी स्वीकार किया जाता है।

कुष्ठरोग संक्रामक रोग नहीं है

पत्रकारों का कहना है कि आनंदवन में गांधीजी जीवित हैं—क्योंकि यहां पर उनके सपने साकार हो गये हैं। यहां आत्मनिर्भरता है, सभी लोग बड़े प्यार से संयुक्त परिवार बना कर रहते हैं। डा. विकास आमटे पत्रकारों को बताते हैं, "लोग कैंसर जैसे भयंकर रोग से घृणा नहीं करते परंतु कुछ लोग आज भी कुष्ठरोग से घृणा करते हैं। जबकि कुष्ठरोग कोई संक्रामक या छुतहा बीमारी नहीं है क्योंकि हम तीन पीढ़ियों से इन लोगों के साथ रह रहे हैं पर हम में से किसी को भी कुष्ठरोग नहीं हुआ।"

डा. विकास आमटे नये आनंदवन की देखभाल कर रहे हैं। बाबा के कार्य प्रणाली के अनुभवों के कारण उनके विचार सुलझे हुए और समृद्ध हो गये हैं। उनके विचार से रोगी इलाज के लिए टालमटोल करते हैं। इसलिए इलाज के साथ ही साथ रोगी का उमंग, उल्लास कायम रखना जरूरी है। रोगमुक्त होने के बाद उसे कार्य में शामिल कराने के लिए विविध उपाय करने पड़ते हैं। इस प्रकार उन्होंने बाबा की प्रेरणा तथा प्रणाली को संस्था में कायम रखा है। उनका पूरा-पूरा विश्वास है कि आनंदवन का संघर्ष कुष्ठरोगियों को सामाजिक प्रतिष्ठा, सम्मान दिलाने का संघर्ष है।

अब आनंदवन की व्यवस्था का फैलाव विस्तार पा गया है। महारोगी सेवा समिति का इलाज के लिए लगभग 1500 बिस्तरों से सुसज्जित अस्पताल है। इसके अतिरिक्त बाह्य रोगी विभाग (ओ.पी.डी.) में रोज 500 से ज्यादा मरीज आते हैं। समिति द्वारा संचालित कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं कृषि विद्यालय सुचारु ढंग से चल रहे हैं। आरंभकाल में ही स्थापित प्राथमिक पाठशालाओं के साथ-साथ नेत्रहीन-मूक-बधिर विद्यालय में भी अनेक छात्र हैं। वयस्कों के लिए 'उत्तरायण' का आयोजन किया गया है। स्नेह-छाया में लगभग 200 बेसहारा वृद्ध रहते हैं।

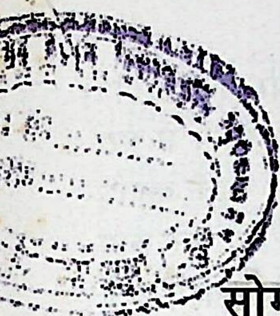
प्रेममय सुरक्षित अरण्य

आनंदवन प्रेम का सुरक्षित वन है। यहां मात्र पचास एकड़ भूमि से कार्य का आरंभ हुआ परंतु आज 465 एकड़ भूमि पर अनेक योजनाएं कार्यरत हैं। ये विकलांग हजारों रुपयों की कमाई करते हैं। खेती-बाड़ी, कपड़ों की बुनाई, भेंट कार्ड तैयार करना, विविध

कलात्मक वस्तुएं बनाना, मुद्रण कार्य आदि काम करके वे कमाई करते हैं।

जाने माने सर्जन पॉल ब्रैंड जब आनंदवन गये तब उन्होंने कहा, "आनंदवन आनंद, सुख का साक्षात् रूप है। आनंदवन मानवता के सरल-सीधे तत्त्वों पर आधारित है परंतु यह बस्ती वैज्ञानिक चेतना से भी भरा हुआ है। आनंदवन ने सचेत, सतर्क रह कर योजनाएं बनायीं और इस वीरान, बंजर खंडहर में सपनों के फूल खिलाये।"

आनंदवन द्वारा संपन्न यह ठोस कार्य और आनंदवन के संस्थापकों की क्रांतिकारी भूमिका से देश के कोने-कोने से लोग आनंदवन को देखने आते हैं। परंतु विपुल प्रशंसा से भी बाबा के पांव जमीन पर ही रहते हैं। अत्यंत विनम्रता पूर्वक बाबा कहते हैं, "मैं कोई नेता नहीं हूं। मैं एक सीधा-सादा समाज सेवक, सोशल मैकेनिक हूं।" तथापि सभी उनके ठोस, रचनात्मक एवं विधायक कार्यों के कारण उन्हें गांधीजी का उत्तराधिकारी मानते हैं।



सोमनाथ श्रम संस्कार शिविर

सोमनाथ मानव शक्ति का विकास करने वाला केंद्र है। आज भी सोमनाथ के जंगल में अखिल भारतीय श्रम संस्कार शिविर प्रति वर्ष संपन्न होता है। सोमनाथ का शिविर आधुनिक नवयुवकों को यही संदेश देता है कि अपने तथा दूसरों के जीवन को संवारते समय परिश्रम करते हुए जो धूल फांकते हैं, उसी धूल के साथ जीना है। देश के लिए प्राणों का बलिदान करो, कहना बड़ा आसान है, परंतु यह कहना कठिन है कि देश के लिए जीयें तो कैसे जीयें? आधुनिक नवयुवकों को अपने मन में समाज विषयक कृतज्ञता का भाव ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाना चाहिए।

श्रमिक प्रवृत्ति

हृदय से लगाये हुए मूल्यों के साथ ईमानदारी, यही बाबा के जीवन का मूलमंत्र है। श्रमिक प्रवृत्ति ही बाबा के जीवन की विशेषता है। शारीरिक परिश्रम बाबा की उपासना है। उनके विचार से परिश्रम एवं कृति के बिना चिंतन निष्फल होता है।

माटी का मखमली स्पर्श और उसकी सोंधी-सोंधी सुगंध बाबा को बहुत भाती है। बर्तन मांजना, कपड़े धोना, खुदाई, मालिश करना, सारे काम बाबा बड़े चाव से करते हैं। साधनाजी की बीमारी में तथा जब बच्चे छोटे-छोटे थे, तब सारे काम वे स्वयं निपटाते।

भंगी का काम करते समय उन्होंने अपने सिर पर मैला ढोया। 'श्रमाश्रम' की संकल्पना कार्यान्वित करते समय वे सब्जी से भरा टोकरा सिर पर उठा कर बाजार ले गये। वरोड़ा की सड़कें बुहारीं, लकड़ियां काटीं, ईंट-पत्थर ढोये, नालियां साफ कीं। ये सारे काम उनकी दृष्टि से समान प्रतिष्ठा के हैं। जैसे कुल्हाड़ी, फावड़ा, कुसी (फाल) बाबा के सगे-संबंधी हैं। बाबा ने सोमनाथ के कुरुक्षेत्र पर हजारों युवकों को प्रोत्साहित किया है।

श्रम संस्कार शिविर का उद्देश्य

आज का युवक दिशाहीन है, विफलता से ग्रस्त है, हताशा-निराशा से घिरा हुआ है। इस प्रकार जब सारे विश्व में हलचल मची हुई थी, तब बाबा ने युवाशक्ति को रचनात्मक काम में जुटाया, इसीलिए सोमनाथ का श्रम संस्कार शिविर एक तरह से अनोखा प्रयोग था। समाज और जीवन में जो-जो चुनौतियां हैं, उनको स्वीकार करना बाबा का स्वभाव और धर्म है।

बाबा ने दिखा दिया कि गांधीजी द्वारा बनाये गये रचनात्मक कार्य ऐसे होने चाहिए जो परंपरागत रूढ़ि को मात देते हैं, जड़ता को नकारते हैं और नूतन तत्त्वों को उभारते हैं। गांधीजी को अपना भगवान श्रम एवं श्रमजीवी के रूप में ही दिखायी दिया। गांधीजी कहते थे—"क्रांति को इस तरह मंझधार में नहीं छोड़ा जाता।" गांधीजी ने कभी ऐसा नहीं होने दिया कि चलो काम हुआ, जान छूटी। न ही इसे स्वीकारा। उस क्रांति से ही एक के पीछे एक सैकड़ों कार्यों का जन्म होता था। इसके पीछे यह उद्देश्य था कि कार्यकर्ताओं की शक्ति बढ़ेगी। यह विचार बाबा ने सोमनाथ श्रम संस्कार शिविर में साकार किया, इस उद्देश्य को मूर्त रूप दिया।

'हाथ निर्माण के लिए, रचनात्मकता के लिए, नव-निर्माण के लिए होते हैं, न कि दूसरों पर उठाने के लिए, धमकाने के लिए'—इस मूलमंत्र के साथ रचनात्मक एवं सर्जनशील कार्यक्रमों के माध्यम से युवकों में निपुणता, आत्मविश्वास, प्रेरणा, कार्यक्षमता का विकास करना, यही बाबा की श्रम संस्कार शिविर का मूल उद्देश्य था।

बाबा चाहते हैं कि इन सारे संस्कार शिविरों से युवक अपने देश के अतीत से परिचित हों, उन्हें वर्तमान का भान हो तथा भविष्य में वे देश को क्या देंगे, इसका आश्वासन देने की क्षमता का उनमें निर्माण हो। देश के अंदर भेदभाव, जातीयता, धर्मांधता, द्वेष का विनाश हो तथा विद्या, विज्ञान और संस्कृति—इन तीन शक्तियों को जीवन में आगे स्थान दिया जाये—यही बाबा का उद्देश्य है।

सोमनाथ श्रम संस्कार शिविर में इस परियोजना के असली सूत्रधार तथा आधारस्तंभ वहां के निवासी तथा कुष्ठरोगियों के एक महान साथी शंकर दादा जुमड़े हैं। अनेक 'एकलव्य', जिनके अंगूठे टूटे हुए हैं, इस श्रम संस्कार शिविर की संरचना के लिए अपना योगदान देते रहते हैं।

बाबा के श्रम संस्कारों से संस्कारित युवा शक्ति सोमनाथ में गीत के रूप में मुखर होती है :

हम हैं देश के मजदूर
चाहे धूप खिले या बरसे पानी
कभी न करूं किसी से शिकायत
हम हैं देश के मजदूर ॥

पाठशाला—बिना दीवार की

प्रथम श्रम संस्कार शिविर में विभिन्न राज्यों से विभिन्न

भाषा-भाषी, भिन्न धर्मी, भिन्न जातीय युवागण सोमनाथ आये थे। ये शिविर कठोर अनुशासन, प्यार भरे परंतु बौद्धिक वातावरण में कार्यान्वित होतीं। सारे के सारे सेवाव्रती बाबा के मित्र परिवार में से ही थे। इन शिविरों में दोस्ती, संगीत, फिल्में, नृत्य, अंधविश्वास, विज्ञान, बेरोजगारी, प्रकृति, पर्यावरण जैसे सभी विषयों पर बाबा नये-नये विचारों को गति और बढ़ावा देते। श्रम संस्कार शिविर मानो बिना दीवारों की पाठशाला ही थी। वहां सभी लोग बाबा के साथ परिश्रम में ही 'श्रीराम' को ढूंढ़ रहे थे। कुष्ठरोगी अपने विकलांग, लूले हाथों से उगायी हुई खेती का अनाज व फल-सब्जियों का सेवन कर रहे थे, उसका आनंद ले रहे थे।

प्रति वर्ष सैकड़ों युवा छात्र-छात्राएं इस शिविर में दाखिल होते हैं। इस प्रकार पिछले बीस वर्षों से यह उपक्रम यहां पर कार्यान्वित है तथा लगभग दस हजार युवक-युवतियों के बीस हजार हाथ काम में जुटे हैं। शारीरिक परिश्रम से ही मन की शुद्धि भी होती है, क्योंकि परिश्रम के माध्यम से युवा पीढ़ी में लोकतंत्र, राष्ट्रवाद, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता आदि जैसे गुणों की जड़ें जमती है। इस तरह के शिविरों के माध्यम से ही कुष्ठरोगियों से संबंधित गलतफहमियां दूर की जा सकती हैं।

इस तरह के शिविरों के द्वारा अनुशासन, किसी को भी हेय या तुच्छ न समझना जैसे गुण भी छात्रों के नस-नस में समा दिये जाते हैं। सामूहिक जीवन जीने का एक अनोखा अनुभव होता है यहां।

ऐसे ही शिविरों में नये कार्यकर्ता तैयार होते हैं। सभी कार्यकर्ताओं में कार्य के प्रति समर्पित होने की भावना भले ही न हो पर यह निर्विवाद सत्य है कि लगभग बीस से पच्चीस प्रतिशत युवकों पर इसका प्रभाव पड़ता है। उसी तरह इस बात का प्रत्यक्ष दर्शन भी

सोमनाथ में ही होता है कि आदर्श शिविर कैसा हो। क्योंकि इन शिविरों को बाबा और साधनाजी का सदा मार्गदर्शन मिलता रहा है।

बाबा आमटे की प्रेरणा से ही मध्य प्रदेश स्थित झाबुआ में युवाग्राम की स्थापना हो गयी है। अनेक लोग प्रभावी ढंग से काम में जुट गये हैं। यह सच नकारा नहीं जा सकता कि उनकी इसी प्रेरणा से स्वयं बाबा के बेटे एवं बहुएं ही नहीं, बल्कि विभिन्न जीवन क्षेत्रों से आये अनेक कार्यकर्ताओं के दल तैयार होने में सहयोग मिला। बाबा में कार्यकर्ता निर्मित करने की अद्भुत क्षमता है। उनके पास ऐसे अनाड़ी, अनपढ़ लोग आते हैं जो बाद में लाखों रुपयों का हिसाब-किताब सफलतापूर्वक निपटाते हैं। उन्हें देखने से मनुष्य में छिपी हुई शक्ति के स्रोत का दर्शन होता है।

स्व. अण्णा साहब सहस्त्रबुद्धे, जो विख्यात सर्वोदयी कार्यकर्ता तथा खादी परियोजना के प्रसारक हैं, कहते हैं, "बाबा आमटे हमारे कार्यकर्ताओं की सबसे बड़ी सफलता हैं। सभी रचनात्मक कार्य बाबा ने आत्मनिर्भर करके दिखाये। बाबा ने सर्वोदय तथा समाजवाद का सफलतापूर्वक गठबंधन कर दिखाया है।"

'मशीन की सहायता से मानव को शक्तिमान बनाया जाय परंतु मनुष्य को मशीन न बनाया जाय', यही विचार बाबा की साधना का मुख्य संदेश है।

हाथ रचनात्मक कार्य के लिए होते हैं

बाबा को सोमनाथ गांव के पास तेरह सौ एकड़ जमीन वन विभाग ने दी थी। सोमनाथ परियोजना का आरंभ करने के लिए बाबा साधनाजी को साथ लेकर निकले। तब साथ में केवल बीस लोग थे। जमीन मिल गयी, परंतु वहां केवल एक ही पगडंडी थी जो

मंदिर की ओर जाती थी। शेष हजारों एकड़ घना जंगल तथा बीच से बहते नाले थे। मंदिर के पास एक छोटा-सा झरना था।

परंतु 'हाथ रचनात्मक कार्य के लिए होते हैं', इस घोषणा के साथ जमीन तैयार की गयी। फसल की रोपाई हो गयी, रहने के लिए झुग्गियां तथा दो पक्की इमारतों का निर्माण किया गया। पानी के लिए दो बड़े-बड़े कुएं खोदे गये। गाय, भैंसें आ गयीं, डेयरी बन गयी। सड़कें तथा नाले के ऊपर लकड़ी के पुल बनाये गये। शुरू-शुरू में आनंदवन से अनाज की सहायता मिलती। बाद में यहां पर भी अनाज उगने लगा। विपुल मात्रा में फल, सब्जियां उगायी जाने लगीं। सोमनाथ अब आत्मनिर्भर हो गया।

सोमनाथ में रहने वाले लगभग पांच सौ रोगी यहां कृषि व्यवसाय करते हैं। वैज्ञानिक तरीके से यहां दोहरी बहुवार्षिक फसलों की कृषि होती है।

श्रम संस्कार शिविर में प्रति वर्ष युवकों की संख्या बढ़ रही है। जिस उद्देश्य को लेकर यह परियोजना शुरू हुई थी वह सही दिशा में आगे बढ़ रही है।

बाबा की असाधारण शक्ति, अद्भुत निष्ठा एवं कार्यक्षमता की भूरि-भूरि प्रशंसा होती है। इसी के साथ जानलेवा विरोध एवं ईर्ष्यालु शत्रुता का अभिशाप भी उन्हें झेलना पड़ता है। सोमनाथ की जगह के लिए विवाद खड़ा हो गया। उन पर यह आरोप लगाया गया कि बाबा ने बहेलियों की जमीन हड़प ली। सोमनाथ के जंगल की छह सौ एकड़ जमीन, जो लगातार तीन वर्ष की कड़ी मेहनत से साफ-सुथरी एवं कृषिकार्य के लिए तैयार की गयी थी, विनोबाजी के कहने पर बाबा ने लौटा दी। बाबा उदास हो गये परंतु उसी अनमना अवस्था में भी उनके मन में कविता का स्फुरण हो गया—

मैंने अभी तक जहाज नहीं छोड़ा,
ऐ उमड़ती उग्र तरंगों, समझ लो
मैंने अभी तक जहाज नहीं छोड़ा।

नागेपल्ली

अपनी उदासी मिटाने के लिए बाबा भ्रमण पर निकले। रास्ते में नागेपल्ली में एक छोटी-सी परियोजना खड़ी की जा रही थी। बाबा की कार्यप्रणाली के अनुसार जंगल सफाई, कृषिकार्य, फसल उगाना, झुग्गियां बनाना, बस्ती खड़ी करना और फिर अस्पताल शुरू करना आदि हमेशा के कार्य जारी थे। सन् 1974 से यह स्थान हेमलकसा की लोकबिरादरी परियोजना का 'बेस कैंप' बन गया है। यहां लगभग बीस एकड़ भूमि पर खेती, दुग्ध व्यवसाय, मुर्गा पालन व्यावसायिक रूप में किया जाता है। लगभग बीस कुष्ठरोगी यहां निवास करते हैं और इस परियोजना को सुचारु ढंग से संवार रहे हैं।

"आदिवासियों का विकास, उस समाज का परिवर्तन, यह एक लंबा एवं चुनौतीपूर्ण आंदोलन है। सभी का विचार मैं नहीं कर सकता। परंतु आदिवासियों की जरूरतें, आशा-आकांक्षाएं, सुविधाएं किस प्रकार हल की जा सकती हैं, इस पर मैं सोच रहा हूं और वही मेरे लिए पर्याप्त है," इस तरह के शब्द बाबा ने नागेपल्ली परियोजना की स्थापना करते समय कहे थे।..."शायद हो सकता है, अपने बचपन में आदिवासियों के जीवन में देखी हुई मासूम मुसकान एक बार फिर देखूं—बस, इतना ही सीमित सपना मैंने अपने सीने से लगाया है!" यह परियोजना देखने के बाद यही कहने की इच्छा होती है कि बाबा का यह सपना उनके कार्यकर्ताओं ने पूरी तरह से साकार किया है।

हेमलकसा लोकबिरादरी परियोजना

हेमलकसा में आदिवासियों के लिए लोकबिरादरी परियोजना कार्यान्वित करने का विचार मन में आते ही बाबा के अंतर्मन से बोल उभरे—

चुभ रहे हैं मुझे अपने ही सुख
मेरा साहस है असीम
नवक्षितिज करते हैं सदा इशारा
दूर घने जंगल में मैंने फिर से शुरू किया है खेल
इंसान मेरा नाम।

महाराष्ट्र में चंद्रपुर, गडचिरौली जिले पिछड़े हुए हैं। उनमें भी सिरोंचा तहसील में भामरागढ़ इलाका सबसे अधिक पिछड़ा हुआ माना जाता है। वहां भील, गोंड, हलबा—इस प्रकार बाईस-तेईस जनजातियां हैं। उनमें भी माड़ीया, गोंड सबसे अधिक पिछड़ा हुआ है। वहां शिक्षा का नामोनिशान तक नहीं है बल्कि गरीबी, भूख, दीनता उनकी घुट्टी में समाया हुआ है। माड़ीया लोग धर्मभीरू, ईमानदार तथा मासूम होते हैं। नियमित रूप से वे कर्ज चुकाते हैं। परंतु माड़ीया लोगों को शराब, तंबाकू की जबरदस्त लत लगी हुई है। शराब तो उनके जीवन का एक कभी न छूटने वाला अंग बन गया है। उनका अंधविश्वास असीम है।

इस इलाके के जंगलों में से सात नदियां एवं असंख्य नाले बहते

हैं। अतः पुल बनवा कर ही लोगों को आवश्यक सुविधाएं पहुंचायी जा सकती है। परंतु आज तक यह कार्य अधूरा ही पड़ा है। वर्षा में चारों ओर पानी ही पानी होता है तो गर्मी में पानी की एक बूंद तक न मिलने से मरने की नौबत आती है। सरकारी अफसरों द्वारा शोषण, पुलिस एवं वन विभाग की ओर से फैलायी हुई दहशत, मलेरिया का प्रकोप—सभी संकटों से आदिवासी परेशान हो गये हैं।

इस अंदरूनी इलाके में भ्रमण करते समय बाबा ने हेमलकसा देखा था। वह अप्रैल 1971 का समय था।

लोगों की मान्यता के अनुसार आदिवासी बस्ती के गांव हेमलकसा स्थित घना जंगल ही प्राचीन दंडकारण्य है। पाबुल, पर्लकांटा बांदिया और गौतमी नदियों का वहां संगम है। यह गांव सीमा से सटा हुआ है। उसके दक्षिण में आंध्र प्रदेश, पूर्व में मध्य प्रदेश स्थित बस्तर जिला और बायीं ओर महाराष्ट्र है।

यहां चारों ओर घने जंगल, खूंखार जंगली जानवर, स्पीड ब्रेकर जैसे सड़कों पर लेटे हुए नागराज नजर आते थे। आसपास में आदिवासी बस्ती के अन्य गांव हैं। रात में अलाव जला कर सोना पड़ता है। बस्ती में नंगे बदन घूमते हुए बच्चे, बीमारी, रोग, गरीबी का राज, यह आम नजारा था। एक गांव में सौ में से नब्बे लोग बीमार थे। माड़ीया लोगों के दुख एवं गरीबी ने जैसे बाबा को चुनौती दी। फिर बाबा ने ही इसी गांव का लोकबिरादरी परियोजना के लिए चयन किया। उन्होंने 23 दिसंबर 1973 के दिन परियोजना की आधारशिला रखी।

स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा

स्वास्थ्य, कृषि और शिक्षा—इन तीन सूत्रों पर यह परियोजना

बनाने-चलाने की प्रेरणा बाबा ने दी है। बाबा कहते हैं, "भई, मैं कोई संत-महात्मा तो हूं नहीं, मुझमें भी सैकड़ों खामियां होंगी। परंतु अपना पसीना बहा कर मैं जीवन में मधुरता, खुमारी ले आया हूं। मैं इसलिए बाहर निकला क्योंकि कुष्ठरोगियों के केवल घाव धोने से मानसिक कुष्ठरोग ठीक नहीं होता।"

समर्पित कार्यकर्ताओं का संघ

लोकबिरादरी परियोजना की यह त्रिसूत्री बाबा ने बतायी थी, तथापि उन्हीं की दिखायी हुई दिशा के अनुसार इस परियोजना का मार्ग युवा कार्यकर्ताओं ने तैयार किया—बिलकुल वैसा ही जैसा बाबा चाहते थे।

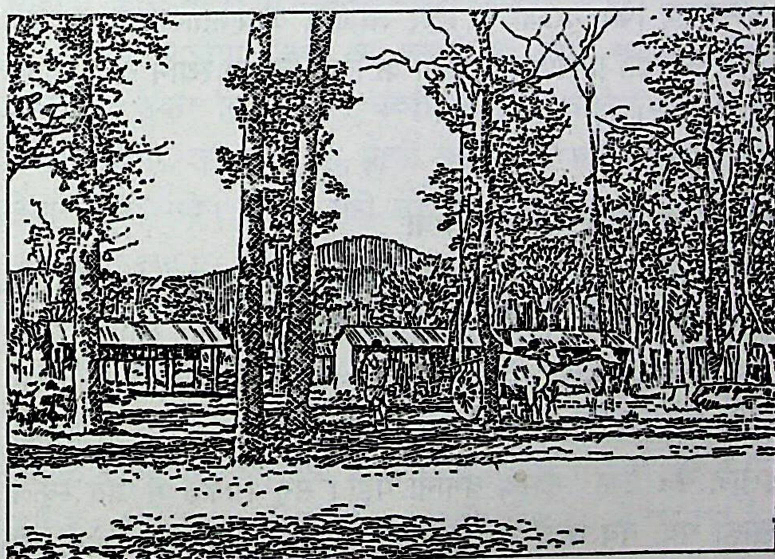
बाबा की यह लोकबिरादरी परियोजना सबसे अधिक समर्पित कार्यकर्ताओं की है। इस बिरादरी के कार्यकर्ता माड़ीया आदिवासी जनों के जीवन में नया आलोक ले आये हैं। नागेपल्ली का जगन्नाथ कालेज की शिक्षा छोड़ कर वहां रहता है। सब्जी बेचना, खेतों में घुटने-घुटने भर कीचड़ में काम करना, डाकघर जाकर माड़ीया लोगों के काम करना आदि कार्य वह खुशी से करता है। सुबह-शाम रोगियों को देख कर कभी-कभी उन्हें टीका भी लगवाता है। विलास मनोहर रेफ्रीजरेटर (शीत मशीन) ठीक करने का इंजीनियर है। खेतों में हल जोतने से लेकर स्कूल में माड़ीया बोली के माध्यम से वह बच्चों को पढ़ाता है। आदिवासियों के बखेड़ों में न्यायाधीश बनता है। गोपाल फडणीस, मुकुंद दीक्षित, शेखर आदि अनेक पढ़े-लिखे युवक मोटे-मोटे वेतन की ऊंची नौकरियों पर लात मार कर इन माड़ीया लोगों की सेवा में लगे हैं।

घने जंगल का यह जीवन खूंखार जानवर, नाग, बिच्छू, जंगली

सूअरों से मुकाबला करते हुए बिताना पड़ता है। तमाम बाहरी दुनिया से संबंध टूट जाता है। सब्जी ही नहीं, रास्ते भी बह जाते हैं। लोकबिरादरी परियोजना के समय (1974 ई.) मुश्किल से कच्ची सड़क थी जो बारिश के दिनों में पूर्णतया बंद रहती थी। वर्षा के दिनों में भेंट-संदेश प्रसंग इस तरह चलते—नागेपल्ली से कार्यकर्ता आधे रास्ते पर आते, बाबा, साधनाजी और सभी लोग खास संदेश लेकर खाने पीने के सामान के साथ निकल पड़ते और डा. प्रकाश तथा अन्य लोग पच्चीस किलो मीटर दूर पैदल आते हुए उनसे मिलते। नवंबर 1975 में नागपुर में डा. प्रकाश को पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई, परंतु उन्हें यह खुशखबरी दो हफ्तों के बाद मिली।

कुष्ठरोगियों का योगदान

इस परियोजना के लिए पचास एकड़ जमीन मिल गयी है। उसमें से बीस एकड़ जमीन पथरीली, चटियल और खेती के लिए अनुपयोगी



है। शेष तीस एकड़ तीनों ओर से नदियों से घिरी हुई है। स्कूली बच्चे, अस्पताल में रहने वाले मरीज, कार्यकर्ता तथा उनके परिवार, इस प्रकार दो-तीन सौ लोगों का यहां पर आना-जाना और व्यवहार होता है। डा. प्रकाश आमटे हेमलकसा कुटीर अस्पताल चलाते हैं। आसपास के बीस गांव इस अस्पताल का लाभ उठाते हैं।

अन्य संस्थाओं से प्राप्त दान एवं कुष्ठरोगियों के पारिश्रमिक तथा उनके द्वारा बनायी हुई वस्तुओं से यह परियोजना चलायी जाती है। विकलांग कुष्ठरोगियों द्वारा आदिवासियों के लिए आनंदवन- सोमनाथ जैसी सुंदर आकर्षक इमारतें भी खड़ी की गयी हैं। फुलवारियां बनायी गयी हैं। नालों पर एक बांध बनाया गया है और एक चिड़ियाघर भी बनाया गया है। आनंदवन-सोमनाथ स्थित कुष्ठरोगी हेमलकसा में अनाज, खाद्य पदार्थ, बीज, खाद, चूना, ईंटें, खपरैल, मेज, कुर्सियां आदि भी भेजते हैं।

बाबा की अन्य परियोजनाओं की तरह यहां पर भी पहले अस्पताल, फिर मरीजों के लिए आवास, कार्यकर्ताओं के आवास और फिर डा. प्रकाश एवं बाबा के लिए निवास स्थान का निर्माण किया गया।

स्वास्थ्य से शिक्षा की ओर यात्रा

माड़ीया लोगों के बच्चे भुखमरी से सूख कर कांटा हो जाते हैं, मलेरिया से बीमार पड़ जाते हैं। पेचिश, पेट दर्द, खारिश जैसी छोटी-मोटी बीमारियां तो उन्हें हमेशा तंग करती ही रहती हैं। अतः उनमें स्कूल के लिए रुचि उत्पन्न करने हेतु सबसे पहले उनका इलाज कर उन्हें स्वस्थ बनाना पड़ा। सन् 1976 में जब स्कूल खोला गया तब बच्चे नहीं आते थे। परंतु अब माड़ीया लोगों की

अपनी खुद की जरूरत से शिक्षा का श्रीगणेश हो गया है। इलाज के लिए वे आश्रमशाला (आदिवासियों के लिए आवासीय स्कूल) में आ गये। धीरे-धीरे उन बच्चों ने अपने-अपने घरों में शिक्षा का महत्त्व समझाया और सन् 1986 में इस स्कूल को स्वीकृति मिल गयी।

डा. प्रकाश आमटे ने अपने साथियों के साथ मिल कर हाथ में दवाई, आंखों में करुणा, हृदय में ममता-स्नेह तथा मन में निष्ठा समेट कर इस जंगल में अज्ञानता, रोग, बीमारी में जकड़े हुए आदिवासियों तक मीलों पैदल जाकर उनसे संपर्क साधा और उनके जीवन में रोशनी फैलायी। इसं कार्य में भी कुष्ठरोगियों के पराक्रम का साथ मिला। यह एक अपूर्व, अद्‌भुत यशोगाथा है।

यहां के कार्यकर्ताओं को आदिवासियों को पढ़ाने के लिए माड़ीया बोली सीखनी पड़ी क्योंकि वे मराठी भाषा नहीं समझते। माड़ीया बोली थोड़ी हिंदी, थोड़ी तेलुगु से मिलती-जुलती है। माड़ीया बोली तो है पर उसकी कोई लिपि नहीं है।

उन्होंने माड़ीया लोगों के बच्चों के लिए मराठी-माड़ीया शब्दकोश तैयार किया। उन बच्चों के लिए माड़ीया जीवन के प्रसंग, त्योहार, उत्सव, जंगल, प्राणी आदि सभी पर आधारित पाठ तैयार किये गये। इसका यही उद्देश्य था कि बच्चों को स्कूल अपना-सा लगे।

अब हर शनि को वहां के छात्र नृत्य, संगीत एवं लोककला के कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं।

सन् 1976 के स्कूल के बैच का एक छात्र, जिसका नाम कन्ना मडावी था, डाक्टर बन गया है। एक छात्र मुंबई में दूसरे वर्ष में पढ़ रहा है। एक नागपुर मेडिकल कालेज में प्रथम वर्ष में पढ़ रहा है।

एक दंत वैद्यक महाविद्यालय में पढ़ रहा है। तीस से अधिक लड़के अध्यापक, पच्चीस से अधिक पुलिस तथा जंगल सुरक्षाधिकारी के स्थान पर नौकरी कर रहे हैं।

लोकबिरादरी माड़ीया लोगों के जीवन को एक नया रूप दे रही है। शिक्षा की नयी दिशा दिखा कर औपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा का संगम वहां साकार हो गया है। यहां के बच्चे बढ़ईगा री, लुहारी, दर्जी का काम सीखते हैं। दोपहर में खेत जाते हैं। उधर कृषि शिक्षा की कक्षा लेते हैं। फिर रोगियों की मरहम-पट्टी करना, घाव धोना, उपचार करना, मलेरिया, सर्दी-जुकाम-खांसी पर कौन-सी दवाइयां दी जाये—ये सारी बातें भी सीखते हैं। उनमें कुछ निपुण होते हैं। इस प्रकार नंगे पैरों वाले डाक्टर (बेअर-फूटेड डाक्टर्स) तैयार हो रहे हैं। जिन युवकों को इन जंगलों में ही जीवन बिताना है—उनके लिए खेती, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, यही उनके जीवन का आधार हैं। माड़ीया स्वभाव से ही तेज बुद्धिवाले, फुर्तीले, मजबूत तथा जबरदस्त कष्टसहिष्णु होते हैं। इसीलिए आज सभी क्षेत्रों में वे आगे हैं।

खेती-बागवानी

माड़ीया लोगों को हल, कृषि, कृषि-भूमि तैयार करने आदि से संबंधित कुछ भी जानकारी नहीं थी। बाबा ने आदिवासियों की जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े खेती के लिए ले लिये और उन पर प्रयोग किये क्योंकि बाबा मिट्टी पर जान छिड़कते थे। धान ही प्रमुख फसल होने के कारण आदिवासी, उनके बच्चे उनकी खेतों पर काम करने लगे और घर-घर में खेती का प्रसार हो गया।

यह बिरादरी आदिवासियों को खेती करना, फल-सब्जियां

उगाना सिखाती है। फिर उन उगाये हुए फल-सब्जियों का सेवन कर कैसे स्वस्थ रहें, यह भी बताती है। ये आदिवासी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं ताकि जीवन के विविध क्षेत्रों को संवार सकें। आदिवासी संस्कृति को संजोना और इसके साथ ही लोगों को अधिक सक्षम बनने में सहायता करना, इस कार्य में बिरादरी एड़ी-चोटी का जोर लगा रही है।

बहुमुखी स्वास्थ्य परियोजना

हेमलकसा की परियोजना एक बहुआयामी, बहुमुखी परियोजना है। उसमें बालमृत्यु का अनुपात कम करना, मलेरिया से डट कर मुकाबला करना, ये बातें अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

डा. गंगाधर मद्दीवार, जो अमेरिका में रहते हैं, महाराष्ट्र फाउंडेशन की ओर से हिंदुस्तान की कई संस्थाओं में गये और वहां अधिकारियों से भेंट की। कुछ स्थानों पर निमंत्रित किये जाने पर शल्य चिकित्सा भी की, परंतु इन सभी परियोजनाओं में उन्हें लोकबिरादरी हेमलकसा परियोजना का कार्य अधिक स्मरणीय लगा। उनके अनुसार, विदर्भ स्थित गडचिरौली जिले में आदिवासी आर्थिक, सामाजिक दृष्टि से बहुत पिछड़े हुए हैं। गांवों में यातायात के साधनों के अभाव के कारण वे अत्यंत दयनीय स्थिति में जी रहे हैं। ऐसे वंचित, अभावग्रस्त मानव समूह की सहायता करने का यहां एक अद्‌भुत प्रयोग किया गया है। वे कहते हैं—

“वहां चालीस बिस्तरों का एक अस्पताल है जो आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित है। आदिवासियों के लिए अब दूर-दूर तक सात प्राथमिक चिकित्सा केंद्र स्थापित किये गये हैं और स्वयंसेवक सुचारु ढंग से यहां की व्यवस्था देख रहे हैं। पिछले बीस वर्षों से

डा. प्रकाश आमटे, उनकी पत्नी मंदाकिनी तथा उनके साथी यहां अत्यंत निष्ठापूर्वक निःशुल्क सेवा कर रहे हैं।

अस्पताल की इतनी अच्छी सुविधा होने पर भी जो आदिवासी अभी तक अस्पताल में इलाज करवाने के आदी नहीं बने और जो अपने खुले मैदान में ही पड़े रह कर इलाज कराना पसंद करते हैं, उन्हें डा. प्रकाश 'इन पेशंट वार्ड' कहते हैं और उनका वहीं पर इलाज करते हैं।

ऐसे रोगियों को देखने के लिए डा. प्रकाश को दस-दस मील पैदल ज़ाना पड़ता है। परंतु लोकबिरादरी के कार्यकर्ताओं का यह मानना है कि लोगों की आवश्यकताओं को पहचान कर उनके लिए काम करने से ही उनका विश्वास दुगुना हो जाता है। अतः स्वास्थ्यसेवा लोगों तक पहुंचाने के वास्ते दुर्गम इलाकों में मरीजों तक जाने के लिए वे कभी न हिचकिचाते हैं न ही उनके कदम डगमगाते हैं।

इस अथक परिश्रम का परिणाम स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। आज भी आंध्र प्रदेश के गांवों से, बस्तर के जंगलों से तथा तहसील चामोर्शी के गांवों से रोगी इलाज हेतु प्रकाश-मंदा के चिकित्सालय में आते हैं। डा. मंदाकिनी और बबन पांचाल ने काफी मेहनत से एक लाख केस पेपर्स तैयार किये हैं। परिणामस्वरूप किसी भी रोगी के दुबारा आने पर उसकी 'केस हिस्ट्री' तुरंत निकाल कर उसका उचित इलाज किया जाता है।

जो माड़ीया यहां से स्वस्थ होकर लौटता है वह कभी अकेला नहीं आता। वह अपने परिवार के साथ आता है। यहां की खेती, स्कूल-शिक्षा का प्रबंध देख कर खुश होता है। अब तो उनके दैनिक जीवन में बैंक, सोसायटी आदि भी शामिल हो गये हैं।

आज यह माड़ीया, जो समाज में सदा उपेक्षित, शोषित, अज्ञानता से घिरा तथा अन्याय का शिकार बना रहा; रूढ़िग्रस्त, अभावग्रस्त था, अब एक नयी दुनिया में, नये उत्साह के साथ जीने की आकांक्षा करता है।

प्राणियों का अनाथालय

लोकबिरादरी के सभी कार्यकर्ताओं ने यहां के जंगली जानवरों से उतना ही प्यार किया, जितना आदिवासियों से किया। इन जंगली पशुओं का शिकार करना, सिर्फ यही आदिवासियों का जीवन थां। लोकबिरादरी परियोजना की शिक्षा ने, प्यार और सहानुभूति ने उनके उस जीवन को एक नयी दिशा दिखायी। एक मृत बंदरिया के एक जीवित छौने को दस रुपयों में खरीद कर डा. प्रकाश आमटे ने चिड़ियाघर का श्रीगणेश किया।

बंदरिया के बच्चे से शुरू किये गये इस चिड़ियाघर में धीरे-धीरे बाघ, शेर जैसे खूंखार जानवर भी दाखिल हो गये। हेमलकसा का यह चिड़ियाघर आज सभी के आकर्षण का केंद्र बना हुआ है।

पहले माड़ीया स्वस्थ होने के लिए मुर्गे की बलि चढ़ाते थे। परंतु अब स्वस्थ होने के बाद वे डाक्टर को कोई प्राणी, मातृहीन घायल पंछी उपहार-स्वरूप देते हैं जिससे यह चिड़ियाघर समृद्ध हो रहा है, आबाद हो रहा है। जंगल की कटाई और अन्य कारणों से संकटग्रस्त और भयभींत प्राणी अब न केवल यहां सुरक्षित हैं बल्कि उनकी उचित देखभाल भी की जाती है। इसी कारण डा. आमटे ने इसका 'प्राणियों का अनाथालय' सही ही नामकरण किया है। छोटे प्राणी से लेकर शेर तक की शल्यक्रिया करने का मामला क्यों न आ जाये, उसके लिए लोकबिरादरी समर्थ एवं सक्षम है।

श्री विलास मनोहर ने इस 'प्राणी अनाथालय' के अनुभवों पर आधारित एक पुस्तक लिखी जिसका नाम है 'नेगल'। नेगल अनाथालय स्थित एक सिंह का नाम है। इस पुस्तक के जरिये लोग 'प्राणी अनाथालय' से परिचित हो गये। पुस्तक की रायल्टी एवं अनुदान से ज़ो पैसे मिले, उन्हें फिर से इसी अनाथालय के काम में लगा दिया गया।

किसी भी अतिथि को, जो हेमलकसा को भेंट देता है, बाद में भी यही आभास होता है कि वहां की सिंहगर्जना आज भी उन्हें निमंत्रण दे रही है। यहां के प्राणी अन्य चिड़ियाघरों के प्राणियों से अधिक प्रसन्न एवं स्वस्थ हैं।

'श्वाईटझर कपल आफ इंडिया'

हेमलकसा में आदिवासी लोक अदालत भी है। ऐसे ही एक मामले में वहां आसपास के सौ-डेढ़ सौ आदिवासी इकट्ठे हो गये थे। पड़ोस के गांव की एक युवती अन्य गांव के एक आदिवासी युवा अध्यापक से गर्भवती हो गयी थी। डा. प्रकाश आमटे ने उन दोनों को आमने-सामने खड़ा करके उनसे माड़ीया भाषा में प्रश्न पूछे। उन दोनों के संबंधियों से भी प्रश्न पूछे। युवती का कहना था कि यह युवक गांव में आकर रहा था। युवक का कहना था कि यह लड़की उस पर झूठा आरोप लगा रही है। दोनों अपनी बात पर अड़े थे। इतने में डा. मंदाकिनी आमटे ने उस लड़की की चिकित्सीय जांच की और बताया कि उसकी कोख में पांच महीने का गर्भ है। गवाही एवं सारे सबूतों पर गौर करते हुए डा. प्रकाश ने उस युवक से कड़े स्वर में कहा, "तुम झूठ मत बोलो, तुम स्वयं अध्यापक हो, इस प्रकार का आचरण तुम्हें शोभा नहीं देता। तुम्हें शादी करनी

ही होगी।'' सभी ने इस निर्णय की सराहना की। आदिवासी जनजाति में इस डाक्टर दंपत्ति के प्रति इतना भरोसा, इतना आदर ही उनके कार्यों का सम्मान है।

यूरोप के एक देश मोनाको ने डा. प्रकाश आमटे और डा. मंदाकिनी आमटे–दोनों पर डाक टिकट प्रकाशित करते हुए उन्हें 'श्वाईटझर कपल आफ इंडिया' संबोधित कर सम्मानित किया। यह सम्मान इस परियोजना के कार्यों की मान्यतास्वरूप समझा जा सकता है। इस सम्मान के साथ-साथ उन्हें आठ लाख रुपयों की पुरस्कार राशि भी मिली।

बाबा कहते हैं, ''युवा वर्ग भूमिपुत्रों के समान बीजारोपण कर और उसकी जड़ पकड़ने का धैर्य रख कर उसके फलने-फूलने की प्रतीक्षा करें। वह चाहे खेतों में पसीना बहाये, कारखानों में मेहनत करे, सेवा-टहल में लगा रहे, अध्यापन करे, उसमें से ही उसका धर्म प्रकट होता है। धर्म का प्रकटन अपने कर्मों से ही होता है। तिस पर जिसकी खातिर काम करना है, उसके प्रति प्रेम तो होना ही चाहिए।''

लोकतंत्र में एक साधारण, आम इंसान की असाधारण कार्य शक्ति प्रकट करने का चमत्कार रचनात्मक कार्य में ही होता है। हेमलकसा लोकबिरादरी का यह एक चैतन्यपूर्ण परियोजना है जो युवा वर्ग को सेवाभाव के प्रति प्रेरित करने की दिशा में सदा प्रयत्नशील है।

भारत जोड़ो यात्रा

युवा पीढ़ी की योग्यता और पराक्रम पर बाबा का अटूट विश्वास है। अतः बाबा चाहते हैं कि आज का नवयुवक करुणा एवं पराक्रम से प्रेरित होकर विश्व से अमंगल और हिंसाचार का विनाश करने के लिए आगे बढ़े।

बाबा की यह इच्छा है कि समाज में संपन्नता होने के साथ-साथ समता भी होनी चाहिए परंतु वह करोड़ों इंसानों के परिश्रम, बुद्धि, एकता एवं समर्पण से हो। इसीलिए बाबा ने 'भारत जोड़ो' जैसी संकल्पना प्रस्तुत की जो हजारों युवकों का प्रेरणास्रोत बना।

एकात्म भारत के नवनिर्माण का सपना, जो साने गुरुजी देखा करते थे, अब सभी युवकों का सपना होना चाहिए—इस प्रकार की भूमिका बाबा ने 'भारत जोड़ो' यात्रा के पीछे बांधी थी। इसीलिए ही उन लोगों ने जो सोमनाथ श्रम संस्कार शिविर में आये थे तथा उन युवकों ने जो सामाजिक बंधन को मानते थे, इस यात्रा में बड़े जोशोखरोश के साथ हिस्सा लिया। बाबा का 'भारत जोड़ो' यात्रा के युवकों का यह दल आत्मसुधार के विचार से प्रेरित होकर चला था। यह एक साहस यात्रा थी और युवक इस यात्रा के बहाने भाषा, धर्म, जात-पात की दीवारों को लांघ कर मिलजुल कर रहें, इसलिए अपना स्वास्थ्य गिरने के बावजूद भी बाबा ने इस अभियान की

बागडोर संभाली। सन् 1986 में कन्याकुमारी से कश्मीर और सन् 1988-89 में इटानगर से ओखा तक यात्रा का आयोजन किया गया था।

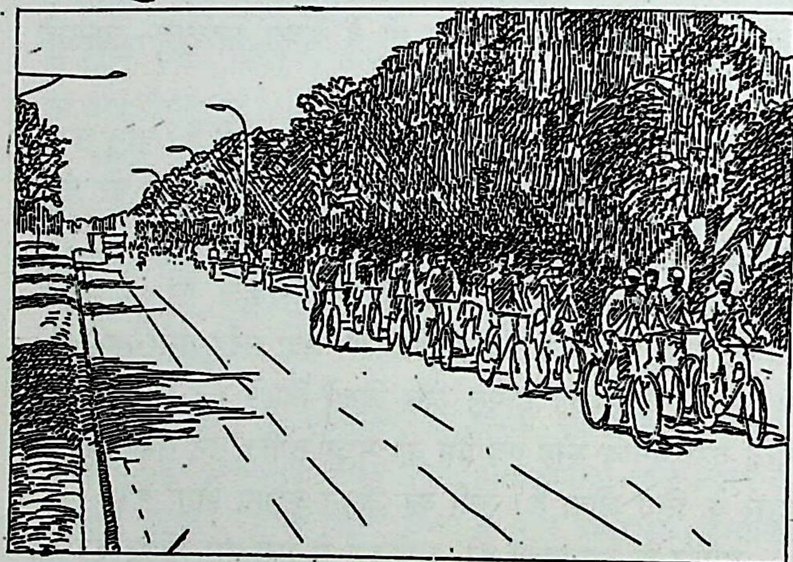
वर्तमान युवा पीढ़ी को इन आयोजनों से जो लाभ हुआ है वह है संघर्ष का भान, जूझने का अहसास। परंतु मूलभूत प्रश्न यह है कि युवकों की यह क्रांति, उनका यह संघ किस बलबूते पर खड़ा रहेगा? रक्षक की या भक्षक की भूमिका के साथ? यदि युवकों को इसका पूरा-पूरा अहसास न हो तो वे केवल भड़काये—उकसाये जाते हैं।

युवाशक्ति अपने स्वप्नों को पूरा करना चाहती है। परंतु उनमें अनुशासन, जिम्मेदारी और अहसास—इस त्रयी के आधार पर जीने की हिम्मत चाहिए।

बुद्धिजीवी युवक भले ही अपनी बौद्धिकता पर इतराते हैं लेकिन दुनिया के प्रति इनका दृष्टिकोण सदा संदेह ग्रस्त रहता है। ये दुनिया को हमेशा धूमिल और बिखरे-बिखरे रूप में देखते हैं। परंतु वही मनुष्य स्नेह एवं प्रेम का मधुर संगीत सुन सकता है जो दूसरे के लिए जीता है। उसी का जीवन कृतार्थ होता है।

समाज के नवयुवकों को नवचेतना से भरा-पूरा जीवन देने की जिद मात्र इसी युवा पीढ़ी में है। इन सारे विचारों का बीजारोपण युवकों के मन में करने के लिए बाबा ने 'भारत जोड़ो' अभियान शुरू किया। उन युवकों का, जो जाति, भाषा, धर्म आदि जैसी बनावटी दीवारों को पार कर सकता है, एक संघ समाज दुनिया के सामने आ जाय तो राष्ट्र में एकता की भावना मजबूत हो सकेगी। इसके लिए बाबा ने नियोजन का श्रमसाध्य एवं कष्टसाध्य अभियान चलाया।

विचार-विमर्श, कार्यक्रमों का नियोजन, उसके लिए आवश्यक विशाल धनराशि, सभी का प्रबंध करना एक मुश्किल कार्य था। तथापि बाबा एक प्रभावी एवं कुशल नियोजक हैं, इसीलिए सागर से हिमालय की यात्रा जैसा अपना यह प्रथम अभियान पूरा कर सके। मात्र 110 दिनों में चौदह राज्यों को पार कर तथा पांच हज़ार किलोमीटर की यात्रा तय करते हुए सवा सौ युवक कन्याकुमारी से कश्मीर पहुंच गये।



इस यात्रा का, जिसे युवकों की प्रचंड सकारात्मक प्रतिक्रिया मिली, श्रीगणेश 24 दिसंबर 1981 के दिन हुआ। चौदह राज्यों में पांच हजार किलोमीटर से अधिक की यात्रा करते हुए 110 दिनों में 12 अप्रैल 1982 के दिन यह दल जम्मू पहुंच गया। यही युवाशक्ति पत्थर फेंकने, घेराव करने, आगजनी करने जैसी निरर्थक कार्यों में अपनी शक्ति लुटा रही थी। बाबा चाहते थे कि यह युवाशक्ति कम से कम सन् 1985 के अंतरराष्ट्रीय युवा वर्ष में

किसी रचनात्मक कार्य से जुड़ जाये। इसके लिए बाबा ने अविराम एवं कलेजा-तोड़ मेहनत की। परिणाम यह हुआ कि युवकों का जोश दिन दुना और रात चौगुना बढ़ने लगा। यह देख कर बाबा भी उत्साह से भर उठे और राष्ट्रीय एकात्मता के उद्देश्य से इस यात्रा का आयोजन पूर्व-पश्चिम में भी किया गया।

दूसरी यात्रा की कालावधि 1 नवंबर 1988 से 26 मार्च 1989 तक तय की गयी। पूर्व की ओर अरुणाचल प्रदेश की राजधानी इटानगर से निकल कर पश्चिमी किनारे के ओखा बंदरगाह को अंतिम पड़ाव नियोजित किया गया। कुल आठ हजार किलोमीटर से अधिक की दूरी 146 दिनों में तय करनी थी। उनमें से 128 दिन साइकिलों पर सवार होकर यात्रा करनी थी और बचे 18 दिन साइकिलों को आराम देना था। कुल चौदह राज्यों को पार करना था, इसलिए पहाड़ी इलाके में हर रोज औसत चालीस किलोमीटर और मैदानी इलाके में औसत साठ किलोमीटर की दूरी तय करनी पड़ रही थी।

भारत जोड़ो यात्रा के प्रति सभी को आत्मीयता हो, इसलिए सभी स्थानिक, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय संस्थाओं को इसमें शामिल किया गया था। बाबा का नेतृत्व अवश्य था परंतु अभियान जनता का ही था। यह एक जन-अभियान है, यह सत्य कभी नजरों से दूर नहीं किया गया। यह आंदोलन युवकों के लिए वरदान सिद्ध हुआ। यह अभियान जैसे एक मुक्त विद्यापीठ ही था। बाईस राज्यों के युवक अभियान की अवधि में एक परिवार की तरह से रह रहे थे।

स्वामी विवेकानंद तथा महात्मा गांधी के संदेश के अनुसार उनका कार्यभार उठाने के लिए इन युवकों ने पूरा वर्ष खुली आंखों से, खुले कानों से देश भर में भ्रमण किया और उन्होंने जैसे जिंदगी

की एक खुली किताब ही पढ़ ली। बाबा के दिमाग में कार्यकर्ता–श्रमिक विद्यापीठ की परिकल्पना का स्फुरण हो रहा था और तब से ही बाबा के मन में एक संघ भारत की संकल्पना साकार करने का विचार भी मंडरा रहा था। इस यात्रा के रूप में बाबा ने उसे साकार किया।

लोकशक्ति यदि समझदार, सुबुद्ध, संगठित एवं क्रियाशील करनी हो तो इस तरह के अभियानों का लाभ निश्चित रूप में होता है।

इस सभा में समय-समय पर विविध भाषाओं में भारतीय एकात्मता का गगनभेदी उद्‌घोष किया जाता। इसके जवाब में आम जनता भी अपने सुर उन सुरों के साथ मिलाती।

भारतीय लोग आमतौर पर मेहनती हैं। वह अपनी भूमि से असीम प्रेम करता है। यद्यपि प्रेम एवं शांति से रहने वाले आम जनता के बीच कुछ लोग फूट डालने का प्रयास करते रहते हैं किंतु हमारे देश की सेना अपना खून और पसीना बहा कर इन सारे प्रयासों को विफल करते रहते हैं। उनके इस कार्य में देश की आम जनता विशेष कर युवकों को अपना हाथ बंटाना चाहिए।

'अरे मनुष्यो, तुमने नीच बन कर ईश्वर का बंटवारा किया, धरती के टुकड़े-टुकड़े कर डाले, सागर के टुकड़े किये, अब कम से कम मनुष्य को तो हिस्सों में मत बांटो।' इस प्रकार इस यात्रा में हजारों-लाखों दिलों को आवाज दी गयी।

इस 'भारत जोड़ो' यात्रा में तीन अपाहिज नौजवान भी शामिल हो गये जिन्होंने जनता का ध्यान आकर्षित किया। एक युवक का, जिसका नाम बाबा सूर्यवंशी था, एक ही टांग साबूत था, फिर भी उसने कन्याकुमारी से कश्मीर और इटानगर से ओखा तक चौदह हजार किलोमीटर साइकिल चलायी। राजस्थान के रमेश की एक

टांग नकली थी और मुस्तफा कोतवाल की टांग पोलियो से अपंग हो गयी थी, फिर भी उसने जिद करके इस यात्रा में हिस्सा लिया। इस प्रकार इस यात्रा के आयोजन से बाबा ने युवाशक्ति को एक रचनात्मक मोड़ देने का महान कार्य किया।

पंजाब यात्रा

हिंसाचार और विध्वंस, जो देश भर में कोहराम मचाए हुए था, बाबा को हमेशा बेचैन करता था। पंजाब का आतंकवाद और उसमें झुलसते हुए असंख्य निरपराध लोगों को देख कर बाबा को अपार कष्ट होता था। वे इन दुखद घटनाओं को देखते हुए इतमीनान से हाथ पर हाथ धरे नहीं बैठ सकते थे। तब उन्होंने शांतियात्रा निकाली और विपत्तियों में घिरे लोगों के जख्मों पर मरहम लगाने का प्रयास किया।

उस हिंसक दौड़ में साधारण नागरिक का अहिंसा पर से विश्वास ढलने लगा था। सिक्ख-हिंदू संघर्ष चरम सीमा पर पहुंच चुका था। साधारण मनुष्य को चिंता में घिरा देख कर बाबा उनकी सहायता के लिए आगे बढ़े। 1 जुलाई 1986 के दिन वे शांतियात्रा में हिस्सा लेने गये। देखा तो कई निरपराध मासूम नागरिक आतंकवाद के शिकार बन चुके थे। बाबा ने अपने गिरते-स्वास्थ्य की बिलकुल परवाह नहीं की और वहां-वहां गये, जहां उनकी जरूरत थी। पंजाब समस्या के लिए उन्होंने वही किया जो उनके जमीर को जंचा। पंजाब के लोगों के मानसिक घावों पर मरहम-पट्टी करने के लिए वे सदा आस्थापूर्वक लगे रहे और आगे बढ़ते गये।

पर्यावरण

प्रकृति के प्रति बाबा अत्यंत कृतज्ञ हैं। भारतवासियों के लिए नर्मदा नदी आध्यात्मिक शक्ति एवं मनोबल का एक अखंड स्रोत माना जाता है। पिछले कई वर्षों से बाबा आमटे मध्य प्रदेश में बड़वानी जिला स्थित कासरवद गांव में नर्मदा तट पर एक कुटिया में रह रहे हैं। वे अपना शेष जीवन पर्यावरण एवं प्रकृति और मानव जीवन के बीच संतुलन बनाये रख कर गुजारना चाहते हैं। इसके लिए वे आस्था के साथ काम में जुट गये हैं।

हरित मोर्चा

बाबा के विचार से हमारे देश की नदियां हमारी संस्कृति का उद्गम स्थान हैं। उन पर अस्थायी लाभ के लिए बांध बना कर आदिवासियों का विकास साध्य नहीं होगा। जल और ऊर्जा जैसे प्राकृतिक साधनों का शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहा असंतुलित बंटवारा कम करने की आवश्यकता है क्योंकि इससे ग्रामीण इलाका अधिक गरीब और शहर अधिक प्रदूषित हो रहे हैं। इन लोकमाता नदियों को बांध के नीचे रोक कर वहां के आदिवासी जीवन, आरक्षित जंगलों तथा वन्य प्राणी जीवन का विनाश न हो, इसके लिए बाबा लगातार प्रयत्नशील हैं।

देश के बड़े-बड़े बांधों के विरुद्ध मानवीय हाथों की शृंखला

तथा पैरों की बेड़ियां तोड़ने की यह एक प्रतीकात्मक कार्रवाई है। अतः हरित मोर्चा (ग्रीन फ्रंट) बना कर वृक्ष, पशु-पक्षी, हवा, जल जैसे प्रकृति के घटकों की सुरक्षा के लिए बाबा पुरजोर अनुरोध करते हैं कि प्रकृति की सुरक्षा एवं पालन-पोषण को अपने विकास कार्यक्रम में सबसे आगे स्थान देना चाहिए।

सन् 1983 से ही बाबा ने बांध विरोधी अभियान की भूमिका लोगों को समझाने के लिए सभा, गोष्ठी, मेले आदि आयोजित करने शुरू कर दिये थे। कार्यकर्ताओं-बुद्धिजीवियों-विद्वानों की सभाएं आयोजित कीं और योजनाबद्ध तरीके से विचारपूर्वक उसके पीछे लग गये। सन् 1990 में बाबा मध्य प्रदेश के आदिवासियों के जंगल की ओर भागे। उनके साथ रह कर उनकी कठिनाइयां दूर करने का उन्होंने निर्णय ले लिया। आनंदवन, हेमलकसा आदि स्थानों पर 1949 ई. से ही जिन महत्त्वपूर्ण कार्यों, परियोजनाओं को बाबा अपने हाथों में लेकर उसे अंजाम दे रहे थे, वहां से वे एक झटके में निकल गये। उनका साहसी, निर्मोही स्वभाव अद्भुत एवं अलौकिक है। बाबा जब कासरवद रहने गये थे तब कुटिया के आसपास उजाड़ एवं वीरान बंजर भूमि थी, परंतु आज उनके रहने से उधर भी पेड़ और लताओं का जाल फैला हुआ है। हवा के झोंकों से झूलती हुई हरी-भरी पर्णराशि, लहलहाते पेड़, लता, फल और फूलों से सारा वातावरण जीवंत हो उठा है।

स्वयं बाबा का शरीर कई प्रकार की बीमारियों से जर्जर हुआ है। फिर भी प्रकृति को सहचरी समझ कर बाबा की समाज के दुर्बल, कमजोर, तलछट घटकों अर्थात् आदिवासियों के साथ जीने की एवं सहज रूप से घुलमिल जाने की प्रवृत्ति बाबा के व्यक्तित्व

की उत्कटता एवं दृढ़निश्चय के साथ ही क्रियाशील प्रकृति-प्रेम का साक्षी है।

जंगल तथा प्रकृति मनुष्यता के लिए जीवन स्रोत हैं। यहां से निकलती ताजा प्राणवायु पर ही मनुष्य का जीवन आधारित है। यही उनके जीवन का मूलमंत्र है। इसी के लिए ही उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया है।

व्यक्तित्व और कविता

'मेरी बीमारी ही मधुमास है, वसंत ऋतु है,' बाबा का यह वाक्य ही जैसे बाबा के रहस्यों का भेद खोलता हैं। युवावस्था में बाबा को व्यायाम और कुश्ती का शौक था। इसकी वजह से उनका शरीर पर्याप्त सुदृढ़ था। इसीलिए तो बाबा आज तक इतना कठोर शारीरिक श्रम करने की क्षमता रख सके। सन् 1951 में आनंदवन की रचना हुई। उस समय उनका अपना तथा रोगी का शरीर, शारीरिक श्रम—यही बाबा की पूंजी थी। कुआं खोदने जैसा विस्मयजनक शारीरिक श्रम भी बाबा अपनी असीम मानसिक शक्ति के बलबूते पर निभा सके। परंतु शरीर से इतना अथक परिश्रम सहा नहीं गया। सन् 1964 से ही बाबा को रीढ़ की हड्डी के दर्द की बीमारी (स्पांडीलाइटिस) ने घेर लिया। पीठ का दर्द हद से बढ़ता गया। उठना-बैठना भी असंभव होने लगा।

आखिर सन् 1974 का नवजात लोकबिरादरी परियोजना डा. प्रकाश और मंदा को सौंप कर बाबा शल्यक्रिया कराने मुंबई आ गये। वहां छीजे हुए मनके निकाल कर दूसरा डालने के लिए उनकी शल्यक्रिया की गयी। फिर बाद में उन्हें लंदन जाकर गर्दन के मनकों पर शल्यक्रिया करवानी पड़ी। चार महीनों के बाद बाबा आनंदवन लौटे, तब तक उन्हें कमर के लिए एक चौड़ा-सा पट्टा और गले के लिए कालर का प्रयोग करना पड़ा जो आज तक कायम है।

बाबा की बीमारियां असहनीय वेदनाओं की गाथा है। परंतु वह कभी बाबा की प्रबल, अदम्य इच्छाशक्ति के आड़े नहीं आयी। लंदन से लौटने के बाद उन्हें एक वर्ष विश्राम करने के लिए कहा गया था पर बाबा को तो मानो 'विश्राम' शब्द से परिचय ही न था। फिर डाक्टरी जांच करानी पड़ी। अब डाक्टर ने 'बांबुस्पाईन' नामक मनकों के रोग का निर्णय दिया—या तो वे सीधे खड़े रह सकेंगे या उन्हें पूरी तरह से पीठ के बल पर लेटे रहना पड़ेगा, वे कभी बैठ ही नहीं सकते। बाबा ने फिर आनंदवन की एक गाड़ी में सोने का प्रबंध करवाया और वे सोमनाथ से हेमलकसा के दौरे पर निकल पड़े। इतनी दर्दनाक बीमारी के रहते हुए उन्होंने चार महीनों में बीस एकड़ धान की खेती करवायी।

वेदना से जुड़ा है नाता हमारा

बरसों से पीठ दर्द की बीमारी सहने के बावजूद बाबा लगातार चलते-फिरते रहते हैं और मानसिक रूप से बड़े सतर्क रहते हैं। बाबा का विचार है कि वेदना से नाता जोड़ने से वेदना कम होती है, पीड़ा सहने की क्षमता आती है। बाबा अन्य लोगों से संवाद साधने की कला में निपुण हैं। बीमारी की असहनीय वेदना सहते हुए वे उन कुष्ठरोगियों का मनोबल बढ़ाते रहते हैं जो दुखी, पीड़ित एवं आहत हैं। तमाम बीमारियों एवं बाधाओं के बावजूद मनोबल बनाये रख कर बाबा आज नर्मदा तट पर आदिवासियों के साथ प्रसन्नतापूर्वक रह रहे हैं।

व्यक्तित्व

बाबा के व्यक्तित्व का लेखा-जोखा करना अत्यंत कठिन है। उनके

अंदर ओज़ है, स्फूर्ति है, दूसरे की पीड़ा के प्रति तड़प है, तिलमिलाहट है। दूसरों के लिए जीने वाला वह एक निराला व्यक्तित्व है। वे विचारों से आधुनिक एवं मानवता के प्रेमी हैं। उनकी वजह से कुष्ठरोगियों के पुनर्वसन में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। दृढ़ निश्चय, समर्पण, किसी पर न्योछावर होने, मर-मिटने की शक्ति और उसके साथ ही गंभीरता, करुणा और निष्ठा इन सभी गुणों का साकार रूप उनके जीवन में समाहित है। आज जब मनुष्य अत्याधुनिक जीवन की खातिर अपने आप को खो देना चाहता है, मानवता को भूल रहा हैं, तब उस मनुष्य और मनुष्यता को बचाने का महान कार्य उनका उद्देश्य हो गया है।

आनंदवन में एक इंजीनियर, जिनका नाम श्री नायर है, बाबा से प्रभावित होकर एक ग्रामीण परियोजना में काम कर रहे हैं। वे कहते हैं, "बाबा एक अजीब-सी बैटरी हैं जो लोगों को 'चार्ज' करती है।" बाबा साहसी हैं, निर्भय हैं। उन्होंने जिस काम को अपने हाथ में लिया, उसे चुनौती मान कर स्वीकार किया और चाहे कितनी भी बाधाएं सामने आयीं, उन्हें मात देते हुए उन्होंने उस काम को उसकी मंजिल तक पहुंचाया। 'बेचैनी ही जिंदगी है, चेतना है, और तृप्ति मौत है', ऐसा बाबा का सोचना है।

समग्र दृष्टिकोण

जिस समय कुष्ठरोगी समाज में तिरस्कृत अवस्था में जी रहा था, तब बाबा ने उसे सामाजिक प्रतिष्ठा दी, इज्जत दी। उसके हाथों को काम करना सिखाया और उसके जीवन को एक नया संदर्भ, नया अर्थ दिया। वे कुष्ठरोगियों से कहते, "जो अंग सड़-गल गये हैं उनके लिए दुख मत करो, जो अंग स्वस्थ हैं, सही सलामत हैं,

उनकी सहायता से काम करना सीखो।" जिनकी तीन उंगलियां गल गयी हैं, ऐसे रोगियों से वे कहते, "अरे, बाकी सात उंगलियों से काम करो।" उन्होंने रोगजर्जर शरीर में स्वस्थ रोगरहित मन तैयार किया। उन्होंने प्रत्येक रोगी से व्यक्तिगत प्रेम करते हुए उसे धीरज बंधाया। ऐसे लूले, लुंज-पुंज हाथों को, जिनकी सारी उंगलियां सड़-गल गयी हैं, काम करने की प्रेरणा दी। वह कुष्ठरोगी जो हाथ से काम नहीं कर सकता, अब खेत की रखवाली करने लगा था। बाबा का उत्साह आसमान छूने लगा। कुष्ठरोगी स्वयं लाचार नहीं रहा बल्कि समाज को वह खुले हाथों से भर-भर कर देने लगा।

बाबा कभी कुष्ठरोगी को बिस्तर पर लिटा कर नहीं रखते, वे उसे काम में लगाते हैं। उन्होंने जंगल साफ किये, रास्ते बनाये, इमारतें बनायीं, अनाज उगाया, तरह-तरह की वस्तुएं बनायीं। जिन कुष्ठरोगियों को घरवालों ने घर से निकाल दिया था, वही रोगी अब आनंदवन में काम करके पैसा कमाते और अपने संबंधियों को पैसे भेज कर उनकी सहायता करते हैं।

बाबा कहते हैं, "यह अजूबा मैंने नहीं किया, यह रोगियों का ही करिश्मा है। आनंदवन में मानवीय मूल्य स्थापित हो चुके हैं। जब कुष्ठरोगी यहां आये थे तब वे हताश, निराश और उदास थे, उनका मन टूट चुका था। परंतु उन्हें प्रेम, करुणा, सहज निष्ठा, स्वतंत्रता और सबसे बड़ी बात समाज में प्रतिष्ठा, मान्यता प्राप्त हो गयी, उन्हें अपने बेहतर भविष्य का अहसास हो गया।"

जीवन की ओर देखने का बाबा का दृष्टिकोण समग्र है, सर्वव्यापी है। उसी प्रकार, वह उपयोगिता और सुंदरता का संतुलन रखते हैं। आनंदवन के बगीचे फल-सब्जियों से लदे-फदे

हैं। वहां रंगबिरंगी फूलों की क्यारियां लहलहाती हैं। वृक्षारोपण का आयोजन किसी त्योहार की तरह किया जाता है। इसीलिए बाबा की बड़ी बहू डा. भारती आमटे कहती हैं, "हम भी कुष्ठरोगियों का इलाज करते हैं, परंतु उस रोगी से एक संपूर्ण व्यक्ति के रूप में प्रेम करना, उसे समझना-परखना मुझे बाबा ने ही सिखाया।"

बाबा की कविता

बाबा का मन एक श्रेष्ठ महाकवि का मन है। कविवर कुसुमाग्रज ने 'संत' नामक कविता में बाबा को अपने शब्दों का उत्सव माना। बाबा ने जीवन में तीव्रता से अनुभव किये प्रसंगों को, खास कर 'श्रमाश्रम मित्र बस्ती' तथा 'आनंदवन' परियोजना कार्यान्वित करते समय की गयी अनुभूतियों को अपनी कविता में मुखर किया है।

महाराष्ट्र के एक अन्य प्रसिद्ध एवं ज्ञानपीठ विजेता लेखक स्व. वि. स. खांडेकर कहते हैं, "यह दृढ़निश्चयी पुरुष, जिसकी प्रवृत्ति अग्नि से प्रकट हो रही याज्ञसेनी द्रौपदीवत् है, आसपास के तथाकथित देशभक्त और समाजसेवकों से पूर्णतया अलग-थलग है।"

बाबा के स्वच्छंद चिंतन में नयेपन और भावनाओं का दर्शन होता है और उसके साथ ही एक तरह का नशा, चुनौती एवं आवेश है। कल्पना और विचारों का एक अनोखा, अद्भुत मिश्रण है। बाबा ने समाज विज्ञान का गहरा एवं प्रचुर अध्ययन किया है। बीसवीं सदी के ज्ञानविज्ञान और उसमें उत्पन्न जटिल, पेचीदी समस्याओं में से ही बाबा ने नष्ट हुए मानव जीवन का निरीक्षण

किया है। इसीलिए कुष्ठरोगियों के जीवन का उद्धार करने में बाबा सफल हो पाये हैं। उनका चिंतन लीक से हटकर नूतन विचारों से भरा हुआ है। उनकी कविताओं से उनका ज्वलंत व्यक्तित्व प्रकट होता है।

उनकी मूलभूत भूमिका सत्य की खोज करना, शिव की आराधना और आनंद का निर्माण करना है। इसके लिए विज्ञान और अध्यात्म का संयोग उन्होंने अपने जीवन में करने का प्रयास किया। इसीलिए उनकी 'ज्वाला और फूल' कविता पढ़ते समय उनकी ज्वलंत, दाहक विचारधारा मन को छू लेती है। उनका मन और उनका जीवन सदैव मिट्टी में से एवं मनुष्य जाति में से सोना निकालने के लिए अथक परिश्रम करता है।

बाबा के जीवन पर गांधी, विनोबा, साने गुरुजी एवं रवींद्रनाथ का प्रचुर प्रभाव है। बाबा ने अनेक महामानवों की विचार प्रणाली एवं उनके कार्य का अखंड चिंतन किया है। बाबा की यह अटूट मान्यता है कि कोई भी भव्य, दिव्य सपना साकार करने के लिए लहू, पसीना और आंसू—इनका त्रिवेणी संगम होना ही चाहिए। बाबा की यह धारणा है कि जो शोषण से समृद्ध होता है वह समाज में अंधेरा फैलाता है।

संजीवनी शक्ति

बाबा का साहित्य कलेजे को तपिश और गरमाहट से भर देता है, आत्मा को प्रकाश देता है। उनका संजीवक एवं सामर्थ्यशाली लेखन अनमोल है। उसमें से ही ऐसे इंसान जन्म लेते हैं जिनके पास बड़ा कलेजा है, जो बड़े दिलवाले हैं।

बाबा आमटे द्वारा लिखित कुछ कविताएं जितनी गेय (गाने

योग्य) हैं उतनी ही वे मन को मुग्ध करने वाली भी हैं। जिन कवींद्र रवींद्रनाथ जैसे महान कवि पर वे मोहित हैं उन्हीं की तरह वे जमीन की सच्चाई और आकाश की उड़ान, इन दोनों का संबंध भूल नहीं सकते। अपने जीवन के अन्य क्षेत्रों में उनके किये हुए कार्य इतने प्रभावशाली हैं कि लोग यह भूल ही जाते हैं कि वे कवि और गीतकार भी हैं। बाबा के गीत आनंदवन में गाये जाते हैं। वहां के विकलांग एवं अन्य निवासी ये गीत सतत गाते रहते हैं। तब सारे वातावरण में एक अपूर्व करुणा छा जाती है। सभी के दिल में एक हूक उठती है।

बाबा के गीतों में 'शाहिरी'—चारण या भाट काव्य की झलक मिलती है। "गरज उठा आंसुओं के विद्रोह का संकेत" (अश्रूंच्या बंडाचा गर्जला इशारा) कहते समय आंसू कितने शक्तिमान होते हैं, उनमें गजब की ताकत होती है, इसका चित्र आंखों के सामने साकार होता है। उनके गीतों में प्रचंड आत्मविश्वास एवं आशावाद भरा हुआ है। उनकी कविता आवेश, जोश तथा जीने की उमंग पैदा करती है तथा नयी दिशा दिखाती है।

उनकी 'लहू में जल उठीं लाख लाख मशालें' (लक्ष लक्ष रक्तामधल्या पेटल्या मशाली) और 'रहने दो पांवों में भारी बेड़ियां, मैं तो गा रहा हूं गीत गति का' (शृंखला पायी असू दे मी गतीचे गीत गाई)—ये कविताएं इसका उदाहरण है कि कुष्ठरोगियों में कितना आत्मविश्वास भरा है और उज्ज्वल भविष्य का क्षितिज कितना विशाल है।

बाबा की 'मनुष्य मेरा नाम' (माणूस माझे नाव) कविता तीसरे जगत के मानवीय मन की तरंग, वेग और भाव को प्रभावशाली शब्दों में अभिव्यक्त करती है। बाबा की कविता, उनके शब्द, उनके

स्वर अनोखे और अद्भुत होते हैं क्योंकि वे जीवन के गर्भगृह से फूटे हुए हुंकार होते हैं।

पुरस्कार

बी. बी. सी. लंदन के ग्राहम टर्नर ने बाबा का विस्तृत साक्षात्कार प्रसारित किया। बाबा ने कहा, "मैं ईसाई नहीं, परंतु ईसा मसीह का भक्त हूं। ईसा का क्रूस इसका प्रतीक है कि दूसरे का दुख दूर करते समय निजी जीवन को किस तरह सूली पर चढ़ाना होता है।"

इसके पश्चात् शीघ्र ही बाबा को अमेरिका से सन् 1983 का डेमियन डटन फाउंडेशन अवार्ड प्राप्त होने के संबंध में पत्र मिला। फादर डेमियन बाबा के कुष्ठसेवा के आदर्श थे। डेमियन डटन वह पुरस्कार है जो बेल्जियम के पादरी डेमियन और एक साधारण अमेरिकन कार्यकर्ता डटन—इन दोनों की कुष्ठसेवा की याद में दिया जाता है। और वह बाबा आमटे को प्राप्त हुआ क्योंकि उन्होंने बरसों से अपना तन-मन-धन अर्पण करते हुए, अपनी जान की बाजी लगा कर कुष्ठरोगियों की सेवा की थी। बाबा पर बधाइयों की बौछार हुई। बाबा को विनोबाजी के शब्दों का स्मरण हो आया, 'दुनिया से मुंह मोड़ कर चलने लगो, एक दिन दुनिया तेरे पीछे-पीछे आयेगी।' परंतु पुरस्कार मिला तब विनोबाजी का स्वर्गवास हो चुका था और महादेव आंबेकर भी इस आनंद में सहभागी होने के लिए जीवित नहीं थे जो सन् 1940 से बाबा का साया बन कर साथ देते आ रहे थे।

बाबा को अंतरराष्ट्रीय एवं प्रादेशिक स्तर पर अनेक पुरस्कार, सम्मान प्राप्त हुए, परंतु बाबा कभी गर्व से इतराए नहीं, न ही उन्होंने आकाश पर दिया जलाने की सोची। उनके पांव जमीन पर

ही रहे और पुरस्कार की सारी रकम उन्होंने आनंदवन के हवाले कर दी और विनम्रता पूर्वक कहा, "यह सम्मान आनंदवन वासियों के किये हुए पराक्रम का है, उनके समृद्ध जीवन का यह गौरव है।"

27 जनवरी 1990 को नोबल पुरस्कार विजेता तथा विश्व विख्यात तिब्बत के धर्मगुरु दलाई लामा आनंदवन को देखने आये थे। बाबा के अथक परिश्रम और सेवा से अभिव्यक्त यह भव्य-दिव्य रूप देख कर उन्होंने कहा, "आनंदवन एक ऐसी परियोजना है जो संपूर्ण विश्व के लिए पथ-प्रदर्शक हो सकती है।" उस प्रसंग में उन्होंने हर्ष व जोश में आनंदवन को बीस हजार डालर के अनुदान की घोषणा की।

बाबा को 'टेम्पलटन जनसेवक' पुरस्कार प्राप्त हुआ जिससे उनकी ख्याति विश्व भर में फैल गयी। यह पुरस्कार उन्हें आस्ट्रेलिया के विख्यात वैज्ञानिक एल. बिच के साथ साझे में मिला। हाल ही में 1 करोड़ रुपये का अंतरराष्ट्रीय गांधी शांति पुरस्कार भी उन्हें मिला है।

नयी राहें

इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करते समय प्रत्येक भारतीय नागरिक किस प्रकार तैयार होगा—इसका नियोजन करने में ही बाबा व्यस्त रहते थे। परंतु उनके विचार से यह उड़ान पक्षीराज गरुड़ जैसी तेज और ऊंची हो, न कि एक साधारण चिड़िया जैसी बालिश्त भर की। बाबा हमेशा समाज को सुंदर और श्रेष्ठ ध्येय संजोए रखने का संदेश देते हैं।

आनंदवन के संधिनिकेतन से प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं में से ग्रामीण संस्थाओं को प्रशिक्षित कार्यकर्ता प्राप्त कराने के लिए 'इंस्टीट्यूट फार सोशल एक्शन (सामाजिक कार्य के लिए संस्थान) की स्थापना विचाराधीन है। विशेषतः उन ग्रामीण युवकों को प्रशिक्षित करना इस संस्था का उद्देश्य रहेगा जो शिक्षा से वंचित हैं, जिनकी पढ़ाई अधूरी रह गयी है। इस प्रकार प्रशिक्षित युवक गांवों में रहेंगे, तभी गांवों की आर्थिक दशा में सुधार आयेगा तथा शहर की ओर भागनेवाले बेरोजगार युवकों के झुंड को रोकना संभव होगा।

इस प्रकार सौ युवक तैयार हो जाने पर उनके साथ एक 'हिम्मतग्राम' तैयार करने का संकल्प आनंदवन अपने हाथ में ले रहा है। उसी प्रकार, यहां पर एक 'सेंटर आफ साईंस फार सोशल जस्टिस' (सामाजिक न्याय के लिए विज्ञान केंद्र) नाम से एक संस्था

खोल कर बाबा के सपने का दूसरा संकल्प भी साकार करने का प्रयास किया जा रहा है। आज विज्ञान और कला केवल धनवानों की बपौती समझी जाती है और धनीमानी लोगों तक ही सीमित रहती है। उन्हें गरीब, निर्धन समाज तक पहुंचाने का प्रयास आनंदवन करेगा।

बाबा की परिकल्पना के अनुसार यहां पर एक 'सूर्यग्राम' भी स्थापित किया जायेगा। आज मानव निर्मित बिजली पर चल रहे सारे कार्य किस प्रकार सौर शक्ति (सूर्य की ऊर्जा) पर चलाना संभव होगा, इसका अनुसंधान यहां पर किया जायेगा। यहां की खेती केवल कम्पोस्ट खाद पर आधारित होगी। भोजन सूरज की ऊर्जा पर ही पकेगा। जब सूरज देवता अनुपस्थित हों, तब पक्की रसोई का भोजन, फलाहार, कच्चा भोजन, इनका पूरक खाद्य अन्न के रूप में प्रयोग करने के सूत्र का पालन किया जायेगा। इस प्रकार इस बात की सावधानी बरती जायेगी कि प्रकृति के संगत में रह कर पृथ्वी का शोषण न हो, बल्कि पोषण हो। वह समृद्ध-संपन्न बनी रहे।

इस प्रकार उम्र के 86वें वर्ष में एक ओर विविध आघातों, हारी-बीमारियों से आहत जर्जर शरीर, तो दूसरी ओर जुझारू वीर योद्धा बन कर बाबा ने एक नये संघर्ष की चुनौती को स्वीकार किया है। आज बाबा आमटे को दुनियाभर का सम्मान एवं भरपूर सफलता प्राप्त हो चुकी है। तथापि अपने हाथ में लिये अनेक कार्यों, जैसे—पर्यावरण-संतुलन, पंजाब समस्या आदि की खातिर अपना शेष जीवन समर्पित करने की वे कामना करते हैं। चाहे उनके प्रयास को सफलता मिले या असफलता, वे अपने कार्यों से नहीं डिगते। इसी में उनकी महानता, अलौकिकता निहित है।

बाबा शिष्य नहीं, उत्तराधिकारी चाहते हैं क्योंकि उत्तराधिकारी अधिक कुशलतापूर्वक, सक्षम होकर कार्यभार संभालते हैं। बाबा निरपेक्ष भाव से टीका-टिप्पणी, निंदा सहते हैं। उनका कहना है, "लोग उसी पेड़ पर पत्थर फेंकते हैं जिस पर खाने लायक फल लगते हैं।"

बाबा का जीवन, उनका कार्य एक ऐसे व्यक्ति का चरित्र है जिसने कितने ही लोगों के जीवन में आनंद-उल्लास की फुलवारियां लहलहायी, अनेकों के जीवन में बहार ले आया। उनकी सेवा एवं जीवन का शोध लेने की यात्रा जारी ही है—अखंड, अथक और अविरत!



शिवम् ऑफसैट प्रेस, ए-12/1, नरायणा इंडिस्ट्रियल एरिया, फेज-I, नई दिल्ली 110 028 द्वारा मुद्रित

मुखपृष्ठ चित्र : श्री विकास आमटे के सौजन्य से



रु. 11.00

ISBN 81-237-3297-X

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया